

वितस्ता



हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय
(राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् द्वारा प्रदत्त 'ए' ग्रेड)
श्रीनगर (कश्मीर)

वितस्ता

2005

कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर कश्मीर

कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की शोध-पत्रिका

सम्पादिका : प्रो० जौहरा अफज़ल
आचार्या एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

सम्पादक मंडल: डॉ० दिलशाद जीलानी
डॉ० ज़ाहिदा जबीन
डॉ० रूबी जुत्शी

मूल्य-२००/-रु०

शालिमार आर्ट प्रेस, श्रीनगर
फोन : 2474972

अनुक्रमांक

क्रम संख्या विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
1. छायावाद के स्तम्भ सुमित्रानंदन पंत	प्रो० गणेशानन्द झा	5-9
2. रीति-कवियों की इतिहास-दृष्टि	डॉ. कैलाश नारायण तिवारी	10-25
3. मुस्लिम महिला कहानीकारों की कहानियों में बदलते मानव मूल्य	डॉ. मधु सन्धु	26-36
4. कबीर साहित्य का समाज-दर्शन	प्रो. रामकली सराफ़	37-43
5. प्रसाद की नारी विषयक अवधारणा	डॉ. जोगेश कौर	44-56
6. हब्बा खातून और महादेवी वर्मा	डॉ. जौहरा अफ़ज़ल	57-63
7. बदलते परिवेश में 'हिन्दी भाषा'	डॉ. दिलशाद जीलानी	63-67
8. कश्मीर में 'हिन्दी काव्य'	डॉ. रूबी जुत्शी	68-73
9. अनबीता व्यतीत: प्रवासियों की दारुन पीड़ा	डॉ. मज़हर अहमद ख़ान	74-79
10. भाषा विज्ञान के प्रतिभान	डॉ. आदिल अमीन काक	80-83
11. मैं पालूंगा एक सपना (कविता)	निदा नवाज़	84-86
12. कश्मीर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में आयोजित 'हिन्दी दिवस' - एक रिपोर्ट		87-88

अध्यक्ष के कलम से

‘वितस्ता’ वर्ष-2005 का अंक अपने सभी पाठकों, शोध-कर्त्ताओं और हिन्दी प्रेमियों को प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। मेरा सदैव यह प्रयास रहा है कि न केवल यह विभागीय पत्रिका समय पर प्रकाशित हो अपितु शोध-छात्रों का मार्गदर्शन हो, पत्रिका के पाठक तथा हिन्दी प्रेमी भी लाभान्वित हों। ‘वितस्ता’ वर्ष-2004 के लिए पाठकों की जो प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुई हैं, उनसे न केवल सम्पादक मण्डल उत्साहित हुआ है बल्कि पत्रिका को नए आयाम प्रदान करने का भी प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत अंक के लिए प्राप्त अनेक विश्वविद्यालयों के विद्वानों प्रो. गणेशानन्द झा (बिहार), डॉ. कैलाश नारायण तिवारी (वाराणसी), प्रो. मधु संधु (अमृतसर), प्रो. रामकली सराफ (वाराणसी), डॉ. जोगेश कौर (शिमला) तथा अन्य स्थानीय लेखकों के लेख प्रकाशनार्थ प्राप्त हुए हैं। यह इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि ‘वितस्ता’ जहाँ विस्तार पा रही है वहीं वह अपने स्तर को बनाये रखने में भी सफल रही है और अहिन्दी भाषी क्षेत्र कश्मीर में हिन्दी के प्रचार-प्रसार, अध्ययन-अध्यापन, अनुसंधान में निर्वाधित रूप से कार्यरत है।

दूसरी ओर कुछ सहृदय आलोचकों ने हिन्दी जगत् में यह भ्रांति फैला रखी है कि कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में साहित्यिक गतिविधियाँ अवरुद्ध हैं। उनकी सूचना के लिए केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि समस्त कठिनाईयों और विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए भी वर्ष-2004 में हिन्दी विभाग के सौजन्य से विभाग में ‘हिन्दी दिवस’ आयोजित किया गया। जिसमें न केवल कश्मीर के अनेक महाविद्यालयों के प्रवक्ताओं, छात्रों ने भाग लिया बल्कि अन्य भाषा क्षेत्रों के विद्वानजनों ने विभाग की गतिविधियों को सराहते हुए कश्मीर घाटी में हिन्दी के विकास की ओर अग्रसर विभाग की भूरी-भूरी प्रशंसा की। इसके अतिरिक्त भी समय-समय पर विभाग में विभिन्न साहित्यिक गतिविधियाँ होती रही हैं।

मुझे आशा है कि वितस्ता के इस नवीन अंक पर आधारित सुंधे पाठकों की प्रतिक्रियाएं हमें पूर्व की भाँति प्राप्त होंगी।

मैं 'कश्मीर विश्व विद्यालय' के कुलपति प्रो. अब्दुल वाहिद साहब तथा कुलसचिव प्रो. मेहराजुद्दीन के प्रति आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने इस पत्रिका को प्रकाशित करने हेतु पग पग पर हमें प्रोत्साहित किया।

(प्रो. जौहरा अफ़ज़ल)

छायावाद के स्तम्भ-सुमित्रानन्दन पन्त

प्रो. गणेशानन्द झा

सर्वथा कोमलप्राण कवि 'पन्त' सुकुमार सूक्तियों के गायक तथा कुशल शब्दशिल्पी हैं। वे प्रकृति के चतुर चितरे और कोमल कल्पनालोक के निवासी हैं। सुन्दरतम् ही उनकी कविताओं का केन्द्रबिन्दु है। सूक्ष्म और अतीन्द्रिय भावाभिव्यंजन में छायावादी कवियों के अंतर्गत प्रसाद, निराला और महादेवी के साथ एक और अतिशय महत्वपूर्ण स्तम्भ के रूप में पंत जी का स्थान अग्रगण्य है।

चंदन की लचकीली डाल पर यदि ताजा मकान का सुलेप कर दिया जाये तो जो सौरभ स्नातस्निग्ध व्यक्तित्व उस सुन्दरम् का उभरेगा वही कदाचित सुमित्रानन्दन पन्त का होगा।

छायावाद की सभी उत्कृष्ट और श्रेष्ठ परिभाषाओं के अंतर्गत स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह, उद्दाम वैयक्तिकता का प्रथम विस्फोट, गीतकाव्य, प्रकृतिकाव्य तथा प्रेम अथवा रहस्यवादी काव्य के रूपों में पंतजी सर्वथा श्रेष्ठतर सिद्ध हुए हैं। उन्होंने स्पष्टोक्ति की है - "प्रकृति के साहचर्य ने मुझे सौन्दर्य-स्वप्न और कल्पनाजीवी बना दिया।" एक वाक्य में यदि कहा जाये तो चित्रमयी भाषा, मधुमयी कल्पना में मानव और प्रकृति-सौंदर्य, आध्यात्मिक सत्ता का भान तथा मानसिक स्वातंत्र्य की अभिव्यक्तियां छायावाद की मुख्य प्रवृत्ति रही है। पंतजी की कविता इन सबों का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये सारे भाव उनकी कविता में प्रचुरता से प्राप्त हैं। प्रकृति में मानवीय भावों का आरोप हो या चित्रमयी भाषा, लाक्षणिक वैचित्र्य हो अप्रस्तुत विधान के द्वारा मानवीय चेतना को व्यक्त करने का क्षेत्र हो, कविवर पन्त ने प्रत्येक स्थल पर छायावाद की उत्कृष्ट प्रवृत्तियों का श्रेष्ठतर निर्वाह किया है। लाक्षणिक व्यंजना, प्रतीक-विधान, अप्रस्तुत योजना, मानवीकरण आदि के सुन्दरतर उदाहरण पंत की कविता में उपलब्ध हैं। कोमलता, रमणीयता, तथा सौन्दर्य में लीन पन्तजी की काव्य-प्रतिभा कल्पना के पर बांध कर बादलों के देश में पहुंच जाती है। उन्होंने प्रकृति में सौन्दर्य, रमणीयता तथा कोमलता को एक साथ पाया है

और उनमें आश्चर्य, आह्लाद तथा आनन्द की त्रिवेणी बहायी है।

छायावाद के एक सजग दर्शन की विवेचना करते हुए कवि ने वेदनावाद को काव्य-सृष्टि का अनिवार्य तत्त्व ठहराया है। वे गाते हैं।

“वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।

ढुलक कर आखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।।

डॉ० नगेन्द्र ने छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहा। उनकी मान्यता है कि यह विद्रोह उपयोगिता के प्रति भावुकता का, रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातंत्र्य का और काव्य-बन्धनों के प्रति स्वच्छन्द कल्पना का विद्रोह था। छायावादी चतुष्टय में सर्वाधिक विद्रोह पंतजी की कविता ने जताया। रूढ़ियों की मृत या पीत स्थिति को कवि ने आदेश के स्वर से झकझोर दिया -

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
हे सुस्त ध्वस्ता है शुष्क शीर्ण।
हिमताप पीत, मधुवात भीत,
तुम वित राग, जड़, पुराचीन।

निभ्राण विगत युग, मृत विहंग
जड़ नीड़ शब्द “औ” श्वासहीन,
च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों से तुम
झर-झर अनन्त में हो विलीन,

‘याचना’ शीर्षक कविता में कविवर पन्त जब अपने शैशवकालीन शब्दों की गुड़िया ही पिरो रहे थे, उसी प्रतिभा में छायावादी प्रतिक्रिया दृष्टिगोचर हो गयी थी- वे मां सरस्वती से याचना करते हैं -

बना मधुर मेरा भाषण,
वंशी से ही करदे मेरे
सरल प्राण औ’ सरस वचन
जैसा जैसा मुझको छेड़ें,
बोलूँ अधिक मधुर’ मोहन,
जो अकर्ण अहि को भी सहसा
कर दे मन्त्र-मुग्ध, नत-फन।

युग-परिवर्तन के उपरान्त नयी सुबह के उजाले में छायावाद ने अपने

नयन खोले। 'प्रथम रश्मि' की पंक्तियां इस स्थिति को स्पष्ट करती हैं -

निराकार तम मानो सहसा
ज्योति-पुंज में हो साकार,
बदल गया द्रुत जगत-जाल में
घर कर नाम रूप नाना,
खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि
जगी सुरभि, डोले मधु बाल,
स्पन्दन कम्पन औ' नवजीवन
सीखा जग ने अपना ना।

छायावादी महाकवि जयशंकर प्रसाद की कविता 'बीती विभावरी जागरी' के गीतमया आवाहन और उन्मेषकारिणी एवं प्रेरणामयी स्वर्णिम सुबह में छायावाद ने अपने नयन खोले। उनकी रचनाओं ने छायावादी महल का खाका तैयार किया। निराला ने उसे दृढ़ अकृति दी;

जिसे पंत की कोमल एवं सुकुमार कल्पनाओं ने रंगीन पच्चीकारी देकर रंगमहल का व्यक्तित्व दिया और महादेवी ने अपने संगीत से उस छायावादी महल को गुंजायमान तथा सनाथ किया। मुकुटधर पांडेय ने दो शब्दों - छाया और वाद को जोड़कर इसका नामकरण कर दिया। इस तरह रंगों और सुरभियों के सूक्ष्म-कोमल भावों की रंगीन कल्पनाओं से सजी रचनाओं की कूचियों से पच्चीकारी का सौन्दर्य-विधान करनेवाले पंत छायावाद के सर्वथा सार्थक कवि व्यक्तित्व सिद्ध हुए। आंसू, उच्छ्वास और ग्रंथि उनके प्रेमगीले गीत हैं। छायावादी प्रवृत्तियों के साथ काव्य-सौन्दर्य से सजी उनकी रचनाओं में नौका विहार, एकतारा, बादल, मौन निमंत्रण, गुंजन, अल्मोड़े वसन्त आदि शीर्षस्थ हैं।

नौका विहार में गंगा का मानवीक रण द्रष्टव्य है -

सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रान्त, क्लान्त, निश्चल,
तापसबाला गंगा निर्मल,
शशिमुख से दीप्ति मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुन्तल।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर,
लहराता तार तरल सुन्दर

चंचल अंचल-सा नीलाम्बर,
 साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर,
 शशि की रेशमी विभा से भर,
 सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर,

स्पष्ट है कि रचना की सूक्ष्म अनुभूति सुकुमार कल्पनाओं से सजधजकर सख्य का निर्वाह भी करती है और कुशल शब्द-शित्व में व्यक्त होकर छायावाद युग का प्रतिनिधित्व भी करती है। उक्तियों की रमणीयता न केवल भावों और विचारों के साथ कोमल कल्पनाओं के योगस्थापन में है बल्कि संगीत की ध्वनियों में वह रमणीयता सारी विलक्षणताओं के साथ पाठकों के मन का सहल आकर्षण कर डालती है।

यही बात और यही स्थिति 'बादल' की रचना में है जो दर्शनीय है-

फिर परियों के बच्चों-से हम
 सुभग सीप के पंख पसार
 समुद्र पैरते शुचि ज्योत्ना में
 पकड़ इन्दु के कर सुकुमार ।

और

हम सागर के धवल हास हैं,
 जल के धूम, गगन की धूल,
 अनिल फेन, ऊषा के पल्लव,
 वारि वसन, वसुधा के मूल ।

इसी तरह 'मौन निमंत्रण' की अभिव्यक्तियों में रहस्यवादी जिज्ञासावृत्ति कोतुहल के साथ छायावादी कविता के परिवेश को विलक्षण को सायुज्य से परम आकर्षणमय और रमणीय बना देती है-

देख वसुधा का यौवन भार
 गूँज उठता है जब मधुमास
 विधुर उर कैसे मृदु उद्गार
 कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास
 नजाने सौरभ के मिस कौन
 संदेशा मुझे भेजता मौन ।

और

न जाने कौन, अये द्यूतिमान

जान मुझको, अवोध, अज्ञान
 सुझाते हो तुम पथ अनजान,
 फूंक देते छिद्रों में गान;
 अहे सुख-दुख के सहचर मौन,
 नहीं कह सकता तुम हो कौन,

सबसे महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति 'बरसो ज्योतिर्मय जीवन' की है जिसमें पंतजी महर्षि अरविन्द के दर्शन से प्रभावित तथा भारतीय उपनिषद और गीता से अत्यधिक अनुप्राणित हैं। गीता की स्थापना में श्रीकृष्ण की वाणी 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' नवानि गृह्णाति नरो परानि तथा शरीरानि विहाय जीर्णाः न्यन्यानि संयाति नवानि देही' में जीवात्मा का सतत नवीन से नवीनतर शरीर धारण करने की बात है परन्तु पंतजी 'बरसो ज्योतिर्मय जीवन' जैसी कविता में शैशव से युवा होने के बाद चेतना सम्पन्न मानव प्राणी को अमृत बना देने का आदेश देते हैं :-

छू - छू जग के मृत रजकण
 कर दो तृण-तरु में चेतन
 मृण्मरण बांध दो जग का
 दे प्राणों का अलिंगन

सजग में मृण्मरण बांध देने का आदेश स्वर कितना औपनिषदिक है, 'मृत्योर्मा अमृतंगमय' को पंतजी सार्थक करते हुए गौतमबुद्ध के तीनों प्रश्नों के उत्तर में यह शुभकामनाएं ही नहीं वरन ज्योतिर्मय भर्ग को स्नेहादेश दे रहे हैं। अर्थात् शरीर में जीर्ण और मृत होते हुए अणुओं को छू-छू कर वह ज्योतिर्मय भर्ग जग के चेतनाशील मन और तन को सदैव युवा बनाये रखें। शरीर न तो रोगी हो, न बूढ़ा हो और न मर सके। उपनिषद की वाणी में 'सर्वे सन्तु निरामयाः' को वे सातत्य और चिरंतनता का मार्ग-दर्शन करते हैं। और यह वाणी कान्तासम्मित उपदेश है। पंतजी 'बरसो' कहते हैं बरसे या बरसें नहीं। यह आदेश का स्वर मानों प्रिया-प्रियतमा का अपने प्रियतम से है।

अतएव, धन्य है पंतजी की वाणी; धन्य है छायावाद और धन्य हैं हम। महाकवि कालिदास की उक्ति में "वंदे च तां वाणीममृतात्मनः कलाम्।"

अध्यक्ष : स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
 भागलपुर, बिहार

रीति-कवियों की इतिहास-दृष्टि

डॉ० कैलाश नारायण तिवारी

इतिहास और साहित्य सामाजिक - जीवनधारा को समझाने में मदद करते हैं और संस्कृति तथा परम्पराएँ अतीत को परखने में साहित्यकारों को जीवन दृष्टि देते हैं। जो साहित्यकार इन दोनों को ठीक ढंग से नहीं समझ पाता वह जनता के बीच लम्बे दिनों तक जीवित नहीं रहता।

साहित्यकार की सामाजिक-अनुभूति लोकजीवन से जुड़े होने का प्रमाण है। जो साहित्यकार अतीत से कुछ सीखता नहीं, परम्पराओं की विवेचना नहीं करता उसके साहित्य में इतिहास-दृष्टि का अभाव स्पष्टतः दिखायी देता है। ऐसी स्थिति में रचनाएँ या तो भावना-प्रधान हो जाती हैं या कल्पना की शिकार। भावना -प्रधान साहित्य जीवन-मूल्य को ठीक ढंग से उद्घाटित नहीं कर पाता। इतिहास और परम्पराओं की विवेचना में कभी-कभी कवियों से इतनी बड़ी भूल हो जाती है कि उनका रचना-कर्म अत्यन्त शिथिल और संवेदन शून्य हो जाता है। क्योंकि उसमें जन-चेतना को दिशा देने की शक्ति नहीं होती। ऐसे रचनाकार जो लोकचित्त को सृजनशीलता से नहीं जोड़ पाता या तो भुला दिया जाता है या जीते जी मर जाता है। इसलिए कवि कहलाने के लिए कविता लिखना और मूल्यपरक कविता लिखना दोनों में फर्क है। यह फर्क भक्त और रीति कवियों की साहित्यिक-चेतना को देखकर आसानी से समझा जा सकता है।

रीति-कवियों की इतिहास-दृष्टि पर विचार करते समय पहला सवाल उठता है कि क्या साहित्यकार और इतिहासकार की सामाजिक-जीवन दृष्टि समान होनी चाहिए ? साहित्य के अन्तर्गत ऐतिहासिक-जीवन दृष्टि की खोज कहाँ तक उचित है ? जिन इतिहास-ग्रन्थों में साहित्यिक-चेतना का जिक्र नहीं होता उसके इतिहास-लेखन पर ऐतिहासज्ञों द्वारा आपत्ति क्यों नहीं उठायी जाती ? साहित्यकारों से ही क्यों उम्मीद की जाती है कि

उनके साहित्य में इतिहास-बोध होना जरूरी है ?

वस्तुतः इतिहासकार और साहित्यकार दोनों ही समाज की देन हैं। दोनों ही युगीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक घटनाओं से अपने-अपने स्तर पर प्रभावित होते रहते हैं। परन्तु दोनों की जीवन-दृष्टि एक दूसरे से हूबहू मेल खाये यह सम्भव नहीं है। क्योंकि ऐतिहासिक-मन तथ्यान्वेषी होता है और साहित्यकार तथ्यों का चितेरा। इतिहासकार घटनाओं का पतर-दर परत जाँच-पड़ताल करता है और साहित्यकार उसमें अपनी ओर से कुछ जोड़ता भी है और घटाता भी है। उच्चकोटि का साहित्य तभी निर्मित होता है जब जोड़ने घटाने की विवेचना अनुभूति के धरातल पर ऐतिहासिक और सामाजिक-चेतना को पचाकर सम्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में इतिहासकार और साहित्यकार की अन्तर्दृष्टि में जो समानता, असमानता पायी जाती है वहीं दोनों के फर्क को रेखांकित करती है। अतः हम कह सकते हैं कि इतिहासकार की अनुभूति और कवि की अनुभूति में उतना ही अन्तर है जितना मस्तिष्क और हृदय में।

इतिहासकार स्वानुभूति सामाजिक तादातय के बजाय घटनाक्रमों पर तथ्यात्मक ढंग से सोचता है। जबकि साहित्यकार युग की यथार्थता पर भावनात्मक ढंग से विचार करता है। कवि सामाजिक-जीवन धारा का सारग्रही होता है। युग की रीति-नीति, खान-पान, सोच-समझ, धर्म, देश आदि पर उसके दृष्टिकोण को उसका हृदय संचालित करता है, तभी सफल रचना का जन्म होता है। फिर भी साहित्यकार और इतिहासकार के नजरिए में फर्क होते हुए भी अतीत के प्रति काफी हद तक नजदीकियाँ होती हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि साहित्य के निर्माण में जितनी भूमिका इतिहास की होती है उतनी ही भूमिका इतिहास की सामाजिक चेतना के अन्तः सूत्रों को समझने में साहित्य की होती है। साहित्यकार सामाजिक-चेतना का व्याख्याता नहीं होता, नियोजन-कर्ता होता है। अतः युगविशेष की ऐतिहासिक-चेतना साहित्यकार की चेतन-शक्ति में समाहित होकर उसकी अनुभूति का हिस्सा बनकर साहित्य में जिस रूप में स्थान पाती है, उसके अन्तः सूत्रों का अध्ययन करना इतिहास-दृष्टि के अन्तर्गत आता है।

हिन्दी-रीति-कवियों को इतिहास-दृष्टि पर विचार करना एक तरह की

चुनौतियों से टराना है। पहली चुनौती तो यही है कि जो कवि-परम्परा राजसभा में बढ़प्पन पाने के लिए कविता लिखने में विश्वास करती हो उसकी दृष्टि अतीत की ओर कैसे जाती ? यदि कभी किसी कवि की गयी भी तो राजसत्ता को चेताने तक ही सीमित रह गयी। आगे चलकर अशर्फियों की पावत ने उसकी ऐसी दृष्टि बदली कि विपरीत-रीत पर भी लिखने में उसने संकोच नहीं किया । मसलन बिहारी।

रीति-कवियों की इतिहास-दृष्टि पर विचार की दूसरी चुनौती “अतीत को समझाने में दृष्टि-भेद की है ।” अतीत की समझ सामाजिक समझ से भी ज्यादा चुनौती पूर्ण है। ऐतिहासिक समझ भी उपेक्षा सामाजिक-भाव-बोध, सामाजिक-आचार-विचार को समझना सरल होता है। सामाजिक-चेतना कवि-कर्म में सहायक होती है। अतीत का बोध कविता को मांजता है। ऐतिहासिक-चेतना रचना में विश्लेषणात्मक दृष्टि की मांग करती है। मूल्यों के बीच से परम्पराओं का संश्लिष्ट रूप जब साहित्य में प्रगतिशील भूमिका का निर्वाह करता है तब साहित्यिक इतिहास-दृष्टि की सही तस्वीर सामने आती है। कवि रसलीन जाति के मुसलमान थे और लड़ाकू सैनिक। उनकी जितनी अच्छी समझ मुस्लिम-धर्म और पीरों तथा औलियाओं में थी उतनी ही हिन्दू-संस्कृति में । मसलन भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर किस कारण लाए, हिन्दू जातियों में गंगा का कितना महत्व है। जैसे विषय पर रसलीन का लिखना उनके गहरे अतीत-ज्ञान का परिचायक है -

विष्णु जू के पग ते निकस सीस बसि,

भगी रथ तप तै कृपा करी जहान पै।

पतित न तारिबे की रीति हेरी ऐरी गंग,

पाइ रसलीन यह तेरेई प्रमान पै ॥

कालिका कालिंदी सुरसती अरुनाई दोउ,

मेटि-मेटि कीन्हें सेत आपने विधान पै।

त्यों ही तमोगुन रजोगुन सब जगत के,

करिकै सतोगुन चढ़ावत विमान पै ॥

जिस तरह पिछले कई वर्षों से साहित्य को समाज से जोड़ने की, साहित्य का समाजशास्त्र तैयार करने की एक मुहीम-सी चल पड़ी है, उसी तरह निम्नतर लोगों के योगदान को साहित्य में स्थान दिलाने के लिए

नयी-इतिहास-दृष्टि की बातें की जा रही हैं। हाशिए पर रहने वाली जातियों ने इतिहास को कब और कहां प्रभावित किया, जानने से जरूरी है यह जानना कि उनकी चेतना को रीति-कवियों ने अपने साहित्य में किस तरह रेखांकित किया है। रीति-कवियों की सामाजिक चेतना की अवहेलना हेतु चाहे जितना भी दोष दिया जाय पर यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने भेदभाव-पूर्ण या उँच-नीच से ग्रस्त साहित्य की रचना की। इन कवियों ने “जाति” के स्तर पर न तो किसी का पक्ष लिया और न ही किसी का विरोध किया। इस स्तर पर प्रायः सभी रीति-कवि निष्पक्ष-भूमिका का निर्वाह करते हुए दिखायी देते हैं। केशव जैसा व्यक्ति जो धुर ब्राह्मण-परिवार से आया था, किसी जाति का उच्चता या निम्नता की बात न करके वर्ण-व्यवस्था के छीजते हुए मूल्यों पर जरूर क्षोभ व्यक्त करता है -

ब्राह्मण बेचत वेदन को, सु मलेच्छ मदीप को पाँव धरै जूँ।

जाहिर है केशव की चिन्ता जितनी वर्ण-व्यवस्था को कायम रखने में नहीं है उससे अधिक चिन्ता चारों जातियों के कर्मच्युत होने को लेकर है। सच तो यह है कि प्रायः सभी रीति-कवि इस मसले पर अपने को बचाते हुए से लगते हैं। वे साम्प्रदायिक-एकता और सहिष्णुता का नारा नहीं लगाते। बल्कि सच्चे मन से साहित्य में उन तथ्यों की निरूपित करते हैं।

जाति, धर्म, सम्प्रदाय और किसी “वाद” विशेष के प्रति रीति कवियों के भाव को भी भक्तियुगीन-चिन्तनधारा के विकास-क्रम में देखना चाहिए। शहर और गाँव के स्तर पर अधिकांश रीति-कवियों का ध्यान शहर-चाक् चिक्यता की ओर ज्यादा गया है। सीधे-सरल ग्रामीणों की तुलना में शहरी उन्हें ज्यादा चतुर दिखते हैं। सम्भवतः इन कवियों को पता नहीं था कि जहाँ ज्यादा ही चालाक होते हैं वहीं स्पर्धा, शोषण, कशपश, होड़ और अपने-पराए का भेद-भाव होता है। शोषण और भ्रष्टाचार की गंगोत्री महलों से निकलती है झोपड़ियों से नहीं। रीति-कवियों ने इस ओर ध्यान न देकर सिद्ध कर दिया कि उत्तम संस्कार भी असंगत परिवेश में पड़कर असंयमित हो जाता है। क्योंकि रीति-कवियों का संस्कार गाँव का था। उनका बचपन

शुचिता, स्वछन्ता और सौम्यता में बीता था। परन्तु जीवन बीता - सामंतों के बीच। नीतिगत-विचार सामंती-दबाव से दब गए। परन्तु त्यौहार और वर्ष के समय इनका संस्कार जागृत हो जाता था। यही कारण है कि होली के समय का जितना मुग्धकारी वर्णन रीति-कविता में मिलता है किसी और में नहीं।

इतिहासकार की तरह साहित्यकार भी ऐतिहासिक-चेतना को पकड़ने में कभी-कभी असफल हो जाता है। मसलन मध्यकालीन इतिहासकारों का लेखन तथ्यात्मक होते हुए भी युग की सामाजिक और आर्थिक कारणों को रेखांकित करने में प्रायः असफल रहा है। यहाँ तक कि मध्ययुग के दरबारों में रहने वाले इतिहासकार-लेखक यह बताने में संकोच करते हैं कि उनके युग के सामान्य लोगों का आर्थिक-जीवन-स्तर कैसा था? ज़मींदारों के बोझ तले दबी शान्त और निचेष्ट जनता अपना जीवन-यापन कैसे कर रही थी? राजनीतिक उथल-पथल का संकेत तो इनके इतिहास में विस्तार से मिलता है परन्तु आर्थिक चेतना का कुछ भी पता नहीं चलता। ठीक यही स्थिति हम रीति-साहित्य में पाते हैं। रीति-कवियों ने मध्ययुगीन यथार्थ को न तो अतीत से जोड़ा और न ही उसके हल के उपाय ढूँढे। जनसामान्य की चेतना को अतीत से उसका रिश्ता बताते हुए एवं वर्तमान का आकलन करते हुए जिस साहित्य का निर्माण होता है उसमें सामाजिक-चिन्तनधारा का सही-सही रूप पाया जाता है। जिसको हम साहित्यकार की वस्तुवादी-इतिहास दृष्टि कहते हैं। सामान्य-जनानुभूति की जीवन-दृष्टि से परे उसके कठिनाईयों की अनदेखी करके जो साहित्य निर्मित होता है उसमें कवियों की अपनी बातें और उसकी सोच ज्यादा मुखर होती है। इस तरह की मनोवृत्ति में सृजित साहित्य में ऐतिहासिक-जन-पक्षधरता की बातें कवि की भावना-प्रवाह का अंग बन जाती हैं। जिसको हम साहित्यकार की भाववादी-इतिहास-दृष्टि कहते हैं।

मैं जिस युग के साहित्य पर ऐतिहासिक चेतना के प्रभाव पर विचार कर रहा हूँ उस युग के अधिकतर इतिहासकार मुस्लिम शासकों के दरबार में बैठकर मनोनुकूल इतिहास लिखे थे। जो तथ्य के स्तर पर सत्य होते हुए भी अतीत के प्रति अनभिज्ञता का सूचक हैं। क्योंकि उनको मालूम ही नहीं था कि भारत का अतीत कैसा था? वैसे भी विजितों के अतीत पर

चाहे वह जितना भी पराक्रम-पूर्ण हो, विजेता ध्यान नहीं देता। इसीलिए उनके द्वारा लिखित इतिहास-ग्रन्थों में प्राचीन भारत के साहित्य एवं इतिहास मूल्यों की झलक नहीं मिलती। लेकिन रीतियुगीन साहित्यकार दरबार में बैठकर साहित्य का निर्माण करने के बावजूद भारतीय-चिंतन परम्परा के प्रति बहुत सावधान था। उसे इतिहास में दिलचस्पी थी। वेद, पुराण, गीता, रामायण और महाभारत प्रिय थे। वस्तुतः भारत का अतीत रीति-कवियों के लिए प्रेरणा स्रोत रहा है। भले ही मुस्लिम-कवि ही क्यों न हों। रसलीन, रसखान, प्रेमी, जलील, मुबारक सभी विल ग्राम निवासी मुस्लिम कवि थे। हिन्दू कवियों से कम भारतीयता उपरोक्त कवियों में नहीं थी। ऐसी ही एक कविता दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत की जा रही है:-

कासी न जानौ न जानौ परागहि, तीरथ तीर हियो नहि हेरी।

जाप जपौ नहिं, मन्त्र पढ़ौ नहिं, आस करौ वसुधा कुल केरी।

मूरति मूल को ध्यान धरौ, कहि टीक मुबारक टेक है मेरी ॥

और मेरो कछु संभव नाहीं, हरि हो , हरि हो हरिहो गति मेरी ॥

इस कविता से यदि मुबारक नाम हटा दिया जाय तो कोई नहीं कह सकता कि यह किसी हिन्दू-कवि की कविता नहीं होगी। रीति-युग की साहित्यिक-सम्पन्नता को समीक्षकों ने दरबारी कहकर इतना उपेक्षित किया है कि उसका श्रेय पक्ष भी अछूता रह गया। रीति-साहित्य में इस तरह की हजारों कविताएं स्फुट रूप में पायी जाती हैं। जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि रीतियुगीन इतिहासकारों की अपेक्षा साहित्यकारों में भारतीय-चिन्तन परम्परा अधिक निखरे रूप में व्यक्त हुई है। यानी इस युग के इतिहासकारों की अपेक्षा साहित्यकारों की इतिहास-दृष्टि काफी सजग और स्वस्थ थी।

रीति-युगीन साहित्य में इतिहास से जुड़ी घटनाओं का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है। जबकि घटनायें सत्य के काफी निकट रही हैं। यह सच है कि ज्यादातर कवियों की दृष्टि सामंतों के शोषण पर न जाकर रंग-महलों की साज सज्जा पर ज्यादा टिकती है। वैसे ही जैसे रासो-काव्य-परम्परा के कवियों की दृष्टि इतिहास की युगीन-चुनौतियों पर न जाकर किसी राजा के किसी लड़की के अपहरण स्वरूप हुए युद्धों की विभीषिका में ज्यादा रमी है। आचार्य प्रवर शुक्ल जी लिखते हैं कि जहां

राजनीतिक कारणों से भी युद्ध होता था, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर कोई रूपवती स्त्री ही कारण कल्पित करके रचना की जाती थी। (हिन्दी साहित्य का इतिहास)

रीति-कवियों में केशव, मतिराम, भूषणलाल, सूदन और रसलीन ने ऐतिहासिक घटनाओं का जिक्र ज्यादा किया है। इन्होंने अपने आश्रयदाताओं का इतना पराक्रमपूर्ण वर्णन किया है मानों प्रतिपक्षी मुगलसत्ता इनके समक्ष कुछ भी नहीं थे। लाल कवि छत्रसाल की वीरता का परिचय इस प्रकार देते हैं:-

चौंकि चौंकि सब दिशि उठै, सूबा खान-खुमान।

अब लौं धावैं कौन पर, छत्रसाल बलवान॥

छत्रसाल वीर थे झुकना उन्होंने जीवन में सीखा नहीं था। इस बात को भूषण ने भी स्वीकार किया था कि “शिवाको बखानो कि बखानो छत्रसाल का”

परन्तु इनके वीरता के चलते जीवन की धारा में कोई ऐसा मोड़ आया जो इतिहास को कोई दिशा दी हो, नहीं माना जा सकता। रीति-कवियों ने ऐतिहासिक-घटनाओं में वीरगाथा काल के कवियों की तरह कथा प्रवाह में अपनी ओर से चमत्कारपूर्ण बातें नहीं जोड़ी। इसलिए कि इस युग में किसी स्त्री के प्रेम-प्रसंग को लेकर युद्ध करने के दिन लड़ चुके थे। रीतियुगीन युद्धों का मुख्य कारण था- हाथ से जाती हुई सत्ता को न छोड़ना। इस सत्ता की लड़ाई में रीति-कवियों के घरानों की भूमिका निर्णायक भी रही है। जिसकी ओर किसी समीक्षक का ध्यान नहीं जाता। एक छोटे से कवि “सूदन” जिन्होंने “सुजानचरित” नामक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा है के काव्य में इतिहास सत्य घटना के रूप में आया है। सूदन की ऐतिहासिक-चेतना पर मुग्ध होते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि “सूरजमल की वीरता की जो घटनाएं कवि ने वर्णित की हैं वे कपोल कल्पित नहीं: ऐतिहासिक हैं। (हिन्दी साहित्य का इतिहास)

वस्तुतः इतिहास के प्रति कवि का कोई प्रतिमान नहीं होता। कवि साहित्य का प्रतिमान तो तय कर लेता है पर अतीत के प्रति प्रायः तटस्थ दिखता है लेकिन युगीन ऐतिहासिक घटनाओं और ऐतिहासिक व्यक्तित्व के प्रति यदि साहित्यकार सजग नहीं है तो उत्तम कोटि का साहित्य-निर्माण

करना कुशिकल होता है। रीति-कवियों के शृंगार-प्रधान साहित्यिक-प्रतिमान से तो हम सभी परिचित हैं लेकिन अतीत और युगीन ऐतिहासिक चेतना के प्रति हम आज भी अनजान हैं। रीति-कवियों ने जितनी तन्मयता पूर्ण युग की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन किया है उतना अतीत का नहीं। सत्रहवीं से लेकर 19 वीं के बीच का भारतीय इतिहास मुगलों की पराजय और अंग्रेजों के विजय का इतिहास है। इसमें जाट, मराठे, राजपूत, सोलंकी, सिंधिया आदि देशी शासक अपनी सुरक्षा की लड़ाई लड़ते हैं जनता की नहीं। इसमें शिवाजी ही एक ऐसे वीर-पुरुष बनकर उभरते हैं जो जनता की भी लड़ाई लड़ते हैं। भूषण की कविता में ऐतिहासिकता का सफल निरीक्षण इसलिए सम्भव हो सका क्योंकि उनका नायक सामान्य चेतना को ऐतिहासिक-दिशा देने में संघर्षरत था। “एक बेर खाती है सो एक बेर खाती है” कि पीणा को भूषण का नायक झेला था। छत्रसाल और शिवाजी की वीरता को जिस तरह भूषण ने शिवा-बावनी, छत्रसाल दशक और शिवराज-भूषण में उठाया है वह कल्पित न होने के साथ-साथ देश और काल की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। “भूषण ने जिन दो नायकों की कृति को अपने वीर काव्य का विषय बनाया वे अन्याय-दमन में तत्पर हिन्दू-धर्म के संरक्षक, दो इतिहास प्रसिद्ध वीर थे। इसलिए भूषण की कविता कविकीर्ति सम्बन्धी एक अविचल सत्य का दृष्टान्त है।

(आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास)

कवि की साहित्यिक दृष्टि केवल इतिहास सम्मत घटनाओं तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए। उसे अपनी आखें खोलकर देखना चाहिए कि समाज किस रास्ते पर जा रहा है। इतिहास-दृष्टि मुकम्मल रूप में साहित्य में तभी सार्थक होती है जब साहित्यकार सामाजिक-चेतना के परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक घटनाओं के महत्व पर खुले दिमाग से विचार करता है। मध्ययुगीन इतिहास से ज्ञात होता है कि रीति-कालीन-देशी-राजाओं का अस्तित्व मुगल सत्ता में निहित था। ग्रामीण-आर्थिक व्यवस्था, कर-संचालन, कुटीर उद्योग और व्यापारिक-क्रिया-कलाप देशी राजाओं और उनके द्वारा नियुक्त छोटे-छोटे सामंतों और जमीन्दारों के हाथ में था। जनता से धान उगाहकर मुगल -सत्ता तक पहुँचाने वाले ये ही लोग थे। लगभग अधिकांश कवि इन्हीं के दरबार में आश्रय पाते थे। गाँव के किसानों की

परेशानी और कुटीर उद्योगों में आ रही अड़चनों की ओर रीति-कवियों का ध्यान नहीं जाता था। साथ ही सामंतों और बड़े शासकों द्वारा बनवाई जा रही नहरों, तालाबों, कुओं, सड़कों, सड़क के किनारे वृक्षों और सरायों की भी इन कवियों ने अनदेखी की है तो क्या यह माना जाए की रीति-कवि सामाजिक-हित और अहित दोनों के प्रति तटस्थ थे ? महलों और दरबारों में चल रही श्रंगारिक-चेष्टाओं, राजनीतिक-प्रतिस्पर्धा और दान में प्राप्त हाथी-घोड़े, सोने-चाँदी और जमीन का जिक्र तो रीति कविता में मिल जाता है परन्तु अकाल, अतिवृष्टि, बाढ़, जानलेवा-बीमारियों आदि का बिल्कुल संकेत नहीं मिलता। तो क्या इसी वजह से हम रीति-साहित्य को सामाजिक-सरोकार का साहित्य न मानकर उसकी उपेक्षा करें। रीति-कविता उपेक्षा की वस्तु नहीं है। सैकड़ा पीछे आज कितने ऐसे कवि हैं जो सामाजिक संकट को साहित्य में गहराई से उठाते हैं ?

महान साहित्य का निर्माण तभी होता है जब साहित्यकार की अतीत-चेतना वर्तमान संकटों के अन्तर्दृष्टि से जुड़ी होती है। समकालीन-संदर्भों के आलोक से अतीत का बचाव करने वाला कवि उत्तम कविता नहीं लिख पाता। रीति-युग में ऐसे दसियों छोटे कवि मिलते हैं जो दरबार से दूर रहकर स्फुट-पदों और दोहों में ऐसी नीति-परक बातें लिखते हैं जो भारतीय-परम्परा को थोड़े में ही विस्तार से मानस-पटल पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं :-

निकट रहे आदर घटे, दूरि रहे दुख होय।

सम्मन या संसार में प्रीति करो जनि कोय।।

समन चहौ सुख देह कौ, तो छोड़ौ ये चारि।

चोरी, चुगली, जामिनी और पराई नारि।।

सम्मन मीठी बात सों होत सवै सुख पूर ।

जेहि नहिं सीखो बोलिबो, तेहि सीखो सब धूर।।

यद दोहा सम्मन नामक एक ऐसे कवि का है जो हिन्दी वालों की दृष्टि में उपेक्षित हैं लेकिन इसकी कही हुई बातें इतनी असरदार होती थी कि गाँव वाले हमेशा याद रखते थे। दरअसल इस तरह के दोहों से रीति-युग के प्रगतिशील ट्रेन्ड का आभास मिलता है। युद्ध में भाग लेती सेनाओं की व्याकुलता, जीत के प्रति अश्वस्त रहने की प्रवृत्ति घोड़ों के खुरों से उड़ती

धूल विशाल सेनाओं को देखकर गाँव वालों का हतप्रभ होना जैसी बातें इतिहास सम्मत वर्णन है जो इस युग के इतिहास लेखकों से ज्यादा रीति-कवियों में पाया जाता है।

रीति-कवियों में इतिहास के ऐसे प्रसंग प्रायः आते रहते हैं जिनके बीच एक पूरी ऐतिहासिक घटना छिपी रहती है। जैसे :-

दारुन तेज दीलिस के वीरन काहू न वंस के बाने बजाए।

छाँड़ि हथ्यारन हाथ न जोरि तहाँ सबही मिलि मूड़ मुड़ाए।।

हाड़ा हठी रहयों ऐंड किए मतिराम दिगंतन में जस छाए।

भोज के मूछनि लाज रही मुख और निलाज के भार नवाए।।

राजपूतों की शान में मूँछ के महत्व को दर्शाने वाली यह कविता अकबर के शासन की प्रधान घटना है। वह यह कि हिन्दू-रानी की मृत्यु के बाद अकबर का आदेश हुआ था कि दरबार में आने वाले लोग अपनी मूँछ मुड़वाकर ही उपस्थित हों। बूंदी-नरेश राजा भोज को अकबर का आदेश नागवार लगा। अन्य सभी मूँछ मुड़वाकर दरबार में जब उपस्थित हुए तो बूंदी-नरेश की मूँछ देखकर इतने लज्जित हुए कि विचारी-विचारी लज्जा को भी भोज के ही मूँछों का सहारा ढूँढना पड़ा। यह घटना मतिराम के कल्पना की उपज नहीं है बल्कि सत्यता पर आधारित है। इस तरह की सैंकड़ों ऐतिहासिक घटनाएं रीति-साहित्य में भरी पड़ी हैं जो दुर्भाग्यवश चापलूसी की मुहर लग जाने से उचित स्थान नहीं पा सकीं। रीति कवियों के ऐतिहासिक-अवदान को भी भुला दिया जाता है। जबकि इसी तरह के कथा-प्रसंगों से रीति-कवियों के ऐतिहासिक बोध की झलक मिलती है।

दरअसल रीति- कवियों ने इतिहास की विवेचना में कल्पना और श्रंगारिकता सहारा नहीं लिया। नायिकाओं के अंग-वर्णन में कल्पना का सहारा लेकर जिस फुहड़ता का परिचय उन्होंने दिया था उससे परे हटकर देशी राजाओं के छोटे-छोटे सामाजिक कार्यों को तिल का ताड़ न ऐतिहासिक-घटनाओं को साहित्य में स्थान देने की प्रवृत्ति सजग-इतिहास-दृष्टि का द्योतक है।

रीति-कवियों की आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति की ओर सभी विद्वानों का ध्यान जाता है परन्तु इस पर किसी की निगाह नहीं जाती कि रीति-कवियों ने जिन राजाओं की खुशामंदी में दसियों ग्रन्थ लिखें,

जिन्हें प्रसन्न करने हेतु नायिकाओं की इतनी वेरायटी तैयार की कि आज नाम गिनाना मुश्किल है, उन राजाओं को उन्होंने जन-रक्षक नहीं बताया। क्योंकि उनके राजाओं में जन-नायक के गुण नहीं थे। झूठ और कल्पना का सहारा लेकर अपने आश्रयदाता को जनप्रिय बनाने का काम इतिहास और साहित्य के साथ धोखा करने जैसा था।

केशव के ओरछा-नरेश मतिराम के भाव सिंह बिहारी के जयसिंह, कुलमति मिश्र के रामसिंह (जयसिंह के पुत्र), सुखदेव मिश्र के फाज़िल अली (औरंगजेब का एक मंत्री) भिखारीदास के हिन्दूपाल सिंह आदि, आश्रयदाओं में इतनी काबिलियत नहीं थी कि इन्हें जनता का सच्चा सेवक बताया जाय। इनकी प्रशंसा में श्रंगार-प्रधान साहित्य का निर्माण ही पर्याप्त था। इन कवियों के आश्रयदाता अतीत से भी कुछ नहीं सीख पाए थे। इसलिए सजग इतिहास बोध का संकट रीति-कवियों में बराबर दिखायी देता है।

रीति-कवियों के आश्रयदाताओं में मानव-हित की लालसा, न्याय करने की समझ, धर्म-रक्षा का भाव तथा चापलूसों एवं कमजोर वर्गों की सहायता करने की प्रवृत्ति विद्यमान थी। परन्तु व्यक्तिगत स्तर पर। जो दरबार में पहुँच गया उसके साथ न्याय कर दिया। वह भी यदि द्योढ़ी पर रोक न दिया गया तो। जो व्यक्ति इनके दरबार तक नहीं पहुँच पाया वह मर रहा है, जी रहा है, किस स्थिति में है जैसी बातों से इनका कोई लेना-देना नहीं था। मतलब यह कि सामूहिक-न्याय-प्रियता का इतिहास रीति-कवि में नहीं मिलता। राजाओं और सामंतों की इस अक्षमता का बेजा वर्णन करने में रीति-कवियों ने सन्तुलित-इतिहास-दृष्टि का परिचय दिया। यानी रीति-कवियों ने अपने साहित्य में आश्रयदातों को उनकी करनी-भर ही स्थान दिया जो उनकी इतिहास के प्रति समाज के प्रति और परम्परा के प्रति सतर्क इतिहास-दृष्टि का घोटक है।

यहाँ यह भी नहीं कहा जा सकता कि ऐसी स्थिति महाकाव्य न लिख पाने की वजह से हुई। क्योंकि जिन लोगों ने महाकाव्य लिखने की कोशिश की, मसलन केशवदास, आलम, बोधा, और पुहुकर आदि उनमें भी नायकत्व का रूप स्थापित नहीं हो सका। रीति-कवियों ने देशी राजाओं के अलावा अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब पर भी कविताएं

लिखी। परन्तु इन्हें अपने साहित्य में इतिहास पुरुष के रूप में रेखांकित नहीं किया। इसके तीन कारण हो सकते हैं। पहला यह कि रीति-कवि “महापुरुष” का चुनाव करने में सतर्क था। दूसरा यह कि “असफल-व्यक्तित्व” जैसे बल पर सिर्फ प्रशंसा के दो-चार शब्द लिखवा सकता है, महाकाव्य नहीं तीसरा यह कि रीति-युगीन कवि-आश्रयदाताओं में महापुरुष या नायक बनने की क्षमता ही नहीं थी। क्योंकि न तो वे युग की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर सकते थे और न ही जनता के समर्थन में खड़ा होकर संघर्ष का बीज बो सकते थे। महापुरुष के बारे में ही गेल ने लिखा है कि “किसी युग का महापुरुष वह व्यक्ति होता है जो युग की आकांक्षाओं को शब्द दे सके, युग को बता सके कि उसकी आकांक्षा क्या है और उसे कार्यान्वित कर सकें। वह जो करता है वह उसके युग का दृश्य और सारतत्त्व होता है। यह अपने युग को रूप देता है। जाहिर है रीतियुगीन आश्रय दाता समाज को दिशा देने में असफल रहे। इसलिए कवियों ने इन्हें जन नायक नहीं बताया।

हालांकि मुगल-सल्तनत के प्रथम चार राजाओं में इतिहास को मोड़ देने की अद्भुत क्षमता थी। महाकाव्य के तर्ज पर इनके कृतित्व और व्यक्तित्व का आधार बनाते हुए इतिहास प्रसिद्ध रचनाएं की जा सकती थी। क्योंकि भारतीय-इतिहास के अन्तर्गत ये लोग सामान्य शासक नहीं थे। अन्य युग की अपेक्षा इन राजाओं के शासन काल में देश का विकास ही हुआ था। अतः विकास की गति और इतिहास के अन्तर्गत ये लोग सामान्य शासक नहीं थे। अन्य युग की अपेक्षा इन राजाओं के शासन काल में देश का विकास ही हुआ था। अतः विकास की गति और इतिहास की जरूरत के आधार पर महाकाव्य का निर्माण हो सकता था। जो संस्कृत के कवि-दृष्टि के अभाव में सम्भव नहीं हो सका। इधर अधिकांश रीति-कवि देशी राजाओं के दरबार में बैठे कविता लिख रहे थे। जाहिर है कि रीति-युगीन देशी राजाओं को महापुरुष नहीं बनाया जा सकता था। क्योंकि संघर्ष करने की इतिहास को दिशा देने की क्षमता नहीं थी। सो झूठी बातों का सहारा लेकर इतिहास को प्रभावित करने का काम रीति-कवियों ने भी नहीं किया। तत्कालीन रूढ़ि-ग्रस्त समाज में रीति-कवि इसलिए स्वर नहीं फूंक सके क्योंकि वे भी समाज के ही बीच से पैदा हुए

थे। सामाजिक-चेतना का प्रभाव उनके साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक था। बावजूद इसके समाज में विसंगतियाँ पैदा करने वाले, सगे-सम्बन्धियों के साथ छल करने वालों की जैसी खबर रीति-कवियों ने ली है वह सराहनीय है। रीति-कवियों ने यह तो कहने का साहस किया है कि “अनिति और अन्याय करने वाला राजा/शासक यदि मर जाय तो दुख नहीं मनाना चाहिए।

व्यक्ति से समाज बनता है और समाज से देश। देश के विकास की जिम्मेदारी राजतन्त्र पर होती है। कवि तो दृष्टि देता है पर राजतन्त्र स्वयं की जिम्मेदारी से मुकर जाए, विवेकहीन निर्णय लेने लगे, विद्वानों की कद्र न करे, जनाकांक्षा की अनदेखी करे तो साहित्यकार उसके खिलाफ स्वर ही तो उठा सकता है :-

नहिं विवेक जेहिं देश में, तहां न जाहु सुजान।

दच्छ जहाँ के करत हैं, करिवर खर सम मान (दीनदयाल जी)

भले बुरे सब एक सम, जो लौं बोलत माँहि।

जानि परत है काग, पिक, ऋतु वसन्त के माँहिं।।

हितहू को हिए न तेहि, जो नर होय अबोध।

ज्यों नकटे को आरसी, होत दिखाये क्रोध ।। (जोधपुर वाजे वृन्द)

भूत और वर्तमान के प्रति इतिहासकार और साहित्यकार की दृष्टि एक समान नहीं होती। इतिहास और परम्पराएं साहित्यकार को देश और समाज के प्रति “सन्तुलित दृष्टिकोण की प्रेरणा देती है। रीति-कवि अपने अतीत के प्रति आस्थावान नहीं हैं। क्योंकि आस्थावान में जिस तरह की जागरुकता देखी जाती है वह रीति-कवियों में नहीं मिलती। उसके कवि-हृदय में इतिहास के प्रेरक-तत्व आ-आकर लौट जाते हैं। व्यक्त भी होते हैं तो श्रंगारिक चेष्टाओं को और तीखे रूप में दिखाने के लिए। यहाँ तक कि राधा और कृष्ण की लीलाएं उनकी कुंठित मनोवृत्ति को व्यक्त करने में सुमिरन का बहाना बन जाती है। तो क्या यह मान लिया जाय कि रीति-कवि साहित्य में इतिहास और परम्परा से दृष्टि लेने में असफल रहे? या दरबारी वातावरण उन्हें इतिहास से जोड़ने में बाधक था?

अकसर देखा जाता है कि सामंती विचार के लोग अपने इतिहास और परम्परा से कटने की बात नहीं करते बल्कि उसको जीवित रखने के लिए

सामाजिक-जीवन में आर्थिक-परिवर्तन के बजाय मन्दिरों, मठों, सार्वजनिक कुओं, बगीचों आदि का निर्माण करवाते रहते हैं। वे जनता को विश्वास दिलाते हैं कि संस्कृति और परम्परा में उनकी गहरी रूचि है। क्योंकि इससे खुद की कमजोरियों को छिपाने का अवसर मिलता है। ऐसी स्थिति में प्रत्यक्षतः यह नहीं माना जा सकता कि सामंतगण रीति-कवियों के इतिहास-गहण में बाधक थे। दूसरी बात यह कि इतिहास को साहित्य का अंग बनाने से सामंती सोच में कोई परिवर्तन नहीं होने वाला था। परिवर्तन की चाहत तो जनसामान्य के बीच से पैदा होती है जिसका प्रतिनिधित्व उन्हीं के बीच का आदमी करता है। भक्तियुगीन चिंतन-परम्परा परवर्ती काल में इसीलिए तो धुंधली पड़ गयी। सन्तों की लाख कोशिशों के बावजूद न तो सामंती रूचि में कोई परिवर्तन हुआ और न ही सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर कोई खास फेरबदल। जैसा रूग्ण, चेतना-हीन और अपने में बन्द समाज भक्तियुग में था वैसा ही रीति-युग में। भक्त-कवियों का हथ्र रीति-कवि देख चुके थे और सामाजिक सुसुप्तता उनके सामने थी। इसलिए सामाजिक-परिवर्तन के डर से सामन्तों ने रीति-कवियों को सच्चा साहित्य लिखने से रोका होगा मानना तर्कसंगत नहीं लगता।

रीति-कवि स्वयं में रूग्ण होने के कारण सामाजिक परिवर्तन के प्रति तटस्थ था। उसकी पूरी ताकत रोटी की सुरक्षा में लगी रहती थी। रोटी का पक्का इन्तज़ाम रखना उसकी इतनी ही विवशता थी जितना आज के साहित्यकारों और साहित्य पढ़ाने वालों की। लेकिन रोटी के लिए रीति-कवि एकदम से नंगा होकर बिक चुका था, कहना उनके साथ अन्याय करना है। दरअसल रीति-कवियों का मूल्यांकन हम उनकी जमीन पर खड़े होकर नहीं करते। अपितु उनकी तुलना भक्त कवियों से करते हुए उन्हें लोक-चेतना विमुख कवियों की श्रेणी में डाल देते हैं। यह दृष्टिकोण उतना ही गलत है जितना प्रासंगिकता का सवाल।

रीति-कवियों की आलोचना करने वालों को अपनी ज़मीन की तलाश करते हुए शुक्ल जी का चश्मा उतार देना चाहिए। उन्हें सोचना चाहिए कि यदि उनको मोटी रकम न मिले, वाद-विवाद संवाद हेतु हवाई जहाज का साधन न मिले, घर-परिवार में आर्थिक तंगी के कारण रोज ही गृह-कलह

हो, तो वे क्या साहित्य, इतिहास, परम्परा और समाज के प्रति ईमानदार रह पायेंगे? उपरोक्त सारी सुविधाएं मिलने के बावजूद आज का साहित्यकार रीति-कवियों से ज्यादा ईमानदार नहीं है। पुरस्कार और पीठों पर वर्चस्व हेतु वह कितना नीचे गिर सकता है, किसी से छिपा नहीं है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि रीति-काल लौट रहा है। चुपके-चुपके पूँजीवादी रूप में। ऐसा कहने का मेरा मतलब यह नहीं है कि मैं रीति-कवियों की दरबारी-वृत्ति, नायक-नायिकाओं का अनावश्यक विभाजन और अलंकार आदि को जस्टीफाई कर रहा हूँ। मेरा कहना है कि उपरोक्त तीनों तथ्यों के अलावा रीति साहित्य में ऐसी बातें हैं जो परम्परा, इतिहास और मध्ययुगीन सामाजिक जीवन को समझने में हमारी मदद करते हैं।

रीति-कवि शुद्ध साहित्यकार था। भक्त-कवि नहीं थे। सन्त भी नहीं थे। सन्तमत-कवियों और समान्य-कवियों में अन्तर होता है। भक्त-कवि त्याग के प्रतिमूर्ति थे। भगवान के सच्चे उपासक थे। देश-काल, जीव-जगत को माया समझते थे। भगवान के सच्चे उपासक थे। रीति-कवि इसमें डूबे हुए थे। आश्रयदाता ही उनके लिए भगवान था। जीविका हेतु कुछ भी करने के लिए तैयार थे :-

जाको निबहै जीविका, करिए सो अभ्यास।

वेश्या पालै शील तो, कैसे पूरे आस ॥ (वृन्द)

घोड़ा घास से दोस्ती करेगा तो खायेगा क्या? खाक्। इसलिए रीति-कवियों का साहित्य-कर्म एक तरह से पेट भरने का सहारा बन गया। सचमुच पेट की अग्नि जो न करा दे-

उदर भरन के कारने, प्राणी करत इलाज।

नाचै वाचै रन भिरै, राचै काज - अकाज ॥

यहाँ नाचै, वाचै और रन भिरै पर ध्यान देने से रीति-युग के कई कवियों का इतिहास खुल जाता है। तुलसी ने भी तो लिखा था कि -

नहिं दरिद्र सम दुखा माँही।

पराधीन समनेहुँ सुख नाहीं ॥

गरीबी और मुफलिसी के दिनों में अच्छे-अच्छे लोग टूट जाते हैं। नहीं टूटे तो तुलसी और कबीर। परन्तु रीति-कवि तो साहित्यकार की भूमिका में था। दरबार उसके साहित्य को पसन्द करता था। समाज न सही दरबार

तो प्रेरक था ही-

जाय दरिद कवि जनन को, सेवे राज समाज।

सिंह नृपति जब होत हैं, हाथ चढ़ै गजराज।।

अरस्तू ने कभी घोषण की थी कि “काव्य इतिहास की अपेक्षा” अधिक गम्भीर” और अधिक दार्शनिकतापूर्ण होता है।” क्योंकि काव्य का विषय सामान्य सत्य होता है। अतः इस दृष्टि से विचार करने में रीति-कवियों के सजग इतिहास-दृष्टि दिखई देती है।

हिन्दी विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी-221005

मुस्लिम महिला कहानीकारों की कहानियों में बदलते मानव मूल्य

डॉ० मधु सन्धु

स्त्री सिर्फ स्त्री है। वह अमेरिकी, अफ्रीकी, ब्रिटेनी, यूरोपीय, भारतीय, पाकिस्तानी नहीं। वह अंग्रेज, हिन्दू, मुस्लिम, नीग्रो, नहीं। उसके दुख सिर्फ उसके हैं। नारी मूल्यों के नाप पर उसे मूल्यहीनता का शिकार बनाया गया है। मानवता के परिप्रेक्ष्य में उसकी झोली में नियति के नाम पर क्रूर अमानवता डाल दी गई है। उसे गहरे गतों से निकाले के नाम पर महिला वर्ष (1975) अथवा महिला दिवस (7मार्च) के आयोजन होते हैं। सीमोन द बोउआ, बेट्टी फ्राइडन, जर्मन ग्रीयर, केट मिलेट, तहमीना दुरानी, किश्वर नाहीद, तसलीमा नसरीन, प्रभा खेतान, अर्चना वर्मा, सरला महेश्वरी, क्षमा शर्मा, शीला सलूजा का अध्ययन स्पष्ट करता है कि उनका सारा लेखन, सारे प्रयास स्त्री के लिए मानव मूल्यों की दुहाई देते हैं। निश्चय ही उसने गुलामी और अशिक्षा से मुक्ति पाई है। कागज़ी तौर पर उसे सभी मानवाधिकार भी मिल गए हैं। बस तीसरी दुनिया के धर्मगुरु, मूल्यों के पहरेदार उसके प्रति थोड़ा सा अधिक अमानवीय और अभद्र हैं। बहुविवाह, तलाक़, बुरका, सुन्नत, दोयम दर्जा- यह औरत कहाँ-कहाँ लड़े। मुस्लिम पर्सनल लॉ मर्सी किलिंग कर सकता है। धर्मग्रंथों के पुनर्मूल्यांकन की बात उठाने वाली तस्लीमा नसरीन के लिए मौत का फतवा जारी कर सकता है” उसे देश निकाला दे सकता है। औरत को मानवी मानने से इन्कार कर सकता है। घुटन संस्कृति बगावत को जन्म देती है और मुसलमान महिला कहानीकारों ने इसी संदर्भ में अन्दर की आग से मूल्य जगत में क्रांति का आह्वान किया है।

मूल्यों की खोज में निकली अनेक महिला मुस्लिम कहानीकारों के नाम गिनाए जा सकते हैं। शेख अब्दुल्लाह की बड़ी बेटी रशीद जहाँ शायद बहुत पहले इस खोज में निकली थी। तरक्की पसंद ‘अंगारे’ संकलन की वे

अकेली महिला कहानीकार थी और उनकी 'दिल्ली की सैर' ने पूरे साहित्य जगत में तहलका मचा दिया था। कथा नायिका मलका बेगम अपने शौहर के साथ रेल में बैठ फरीदाबाद से दिल्ली की सैर के लिए आती हैं। लेकिन औरत के लिए कैसा दिल्ली? कौन सा दिल्ली? कहानी में दो तरह के पुरुष हैं। एक ओर औरतों को आँखें फाड़फाड़ कर देखने वाले, अनाप-शनाप बकने वाले, अकेली औरत को देख फबतियां कसने वाले पुरुष हैं, तो दूसरी ओर वह पति हैं। जो पत्नी को दिल्ली की सैर के लिए लाता तो है, किन्तु उसे रेलवे स्टेशन पर बिठा स्वयं होटल में दो घण्टे तक खाना-वाना खाने में व्यस्त रहता है। एक कम्बख्त बुर्का, दूसरे स्टेशन पर आवारगी करते मर्दुए और तीसरा लापरवाह पति- स्टेशन पर बैठे-बैठे तंग आ मलका बेगम कहती हैं, "खुदा के लिए मुझे अपने घर पहुँचा दो। मैं बाज आई इस मुई दिल्ली की सैर से, तुम्हारे साथ कोई जन्नत में भी न जाए। अच्छी सैर कराने लाए हो" 1, यहाँ पहली बार औरत ने पति के पाँव तले जन्नत बसती है' मूल्य के पुनर्मूल्यांकन के लिए स्पेस छोड़ा है। मुस्लिम महिला कहानीकारों की कहानियां मूल्यों के मानवीकरण, पुनर्मूल्यांकन और औरत की तीसरी आँख खुलने की कहानियां हैं। यहाँ समस्या वर्ग संघर्ष की नहीं, लैंगिक संघर्ष की है।

भारत की मुस्लिम कहानीकारों में इस्मत चुगताई ने जिस बेखौफ, ब्लंट, व्यंग्यात्मक और जोरदार लहजे में मूल्यों के मानवीकरण की बात की है, जिस हमदर्दी से औरत की दबी-छुपी आरजुएं व्यक्त की हैं, उनका कोई सानी नहीं है। आप कह सकते हैं कि 'लिहाफ' 2 होमोसेक्सुएलिटी की लेस्बियन्स वृत्ति पर लिखी गई कहानी है, लेकिन इस्मत का यह कथ्य नहीं है। छरहरी बेगम जान की शादी एक निहायत नेक, पक्की उम्र के नवाब साहिब से हो जाती है। कोई रंडी या बाजारी औरत उनके यहाँ कभी नज़र नहीं आई, खुद हाजी हैं और बहनों को हज करा चुके हैं। न बटेर बाजी का शौक है, न कबूतरबाजी का, न मुर्गेबाजी का। बस दीवानखाना मुफ्त में पढ़ने वाले, पतली कमर वाले नौजवान विद्यार्थियों से भरा रहता है। नवाब साहब बेगम जान को तो मानो घर में लाकर भूल ही जाते हैं। बेगम जान मन्नतें-मुरादें मांगती हैं, चिल्ले बांधती हैं, टोटके करती करवाती हैं, वजीफे पढ़ती हैं, पर कभी पत्थर को भी जोंक लगती है? नवाब साहब

उन्हीं शबनबी कुत्तों वाले लड़कों में अटके रहते हैं। बेगम जान की तरह जिसके नसीबों में जीना बड़ा हो उसे जीना ही पड़ता है। सब ओर से थकी हारी, हताश बेगम जान नौकरानी रबू की तरफ ऐसा मुड़ती है कि हिंदुस्तानी औरत का यह रूप मर्दों को पचाना मुश्किल हो जाता है।

बिहार के रोहतास जिले में जन्मी ज़ाहिदा हिना की कहानियां भी मूल्यों में औरत के लिए तंगदिली महसूसने और मानवता की दुहाई देने वाली कहानियां हैं, 'पानियों में सराब' की नायिका कहती है, "मैं ज़मीन थी, ठोस, पथरीली, अपनी जगह अटल और वह आसमान था, केवल अंतरिक्ष, आंख का धोखा। मैं औरत थी कमजोर, अयोग्य। मैं इसके लिए किसी भी हद तक जा सकती थी, लेकिन युसूफ मर्द था, बहादुर, जानदार, इसलिए कुछ नहीं कर सकता था। लोग क्या कहेंगे, बच्चों का क्या होगा। अफ़ज़र पर क्या गुज़रेगी? वह दुनिया के सभी महादेश घूम आया। दुनिया भर की दौलत उसने इकट्ठी कर ली। इन्टरनेशनल सेलिब्रिटी बन बैठा, लेकिन मध्यवर्ग की इखलाकी इकदार उसके अन्दर पंजे गाढ़े बैठी थी।" 3 मूल्यों का शास्त्रीय अध्ययन करें तो स्वरक्षात्मक और भूख प्यास संबंधी मूल्यों के बाद काम/ प्रेम संबंधी मूल्यों का ही स्थान आता है। रसराज बनकर पूरे विश्व साहित्य पर श्रृंगार का ही साम्राज्य छाया हुआ है। सवाल विहित/मर्यादित अथवा अविहित/ अमर्यादित मूल्यों का नहीं, सवाल ईमानदारी का है और ज़ाहिदा हिना मानती हैं कि ऐसी ईमानदारी औरत में ही हो सकती है। यूसुफ जैसे मर्दों में नहीं।

कुर्रतुल एन हैदर की 'परझड़ की आवाज़' 4 में भी प्रेम विषयक मूल्य मिलते हैं। लाहौर की पढ़ी लिखी युवती तन्वीर फातिमा का प्रथम प्रेम खुशवन्त सिंह से होता है, वह फ़ारुख की मिसट्रेस बनती है, वकार हुसैन से शादी करती है। उम्र बीतती जाती है, देश का विभाजन हो जाता है, पर तन्वीर अपने पहले प्रेमी खुशवन्त सिंह को कभी नहीं भुला पाती।

मूल्यों को परिभाषित करना सबसे दूभर काम है। पता नहीं सच क्या है, झूठ क्या है। पर द्वापर युग कहता है कि वंश चलाने के लिए प्रजा के आदर्श राजाओं रानियों के लिए सब कुछ वैध था। व्यास नियोग पद्धति से अम्बिका और अम्बालिका को संतान सुख दे सकते थे। सूर्य, धर्म, वायु, इन्द्र एवं अश्विनीकुमारों से कर्ण एवं पांडव प्राप्त किए जा सकते थे।

लेकिन कलयुगी मूल्यों में यह सब संभव नहीं है। मेहरुनिसा परवेज की, 'चुटकी भर समर्पण' 5 की पाखी शादी के दस साल बाद भी निसंतान है, किन्तु कलयुगी मूल्य कहते हैं कि वह किसी मनोज की संतान को जन्म नहीं दे सकती एवार्शन उसकी नियती है। "इस चुटकी भर समर्पण ने उसे क्या दिय उसकी ज़िन्दगी के दोनों तराजू के पल्ले खाली ही रहे।" 11

कुरान ने लड़की को निकाह के समय हां या न का अधिकार देकर उसका कद ऊँचा कर दिया है। कुरान शरीफ में बहु पत्नीवाद पर दो आयतें हैं, लेकिन कुरान शरीफ बहु पत्नीवाद की इजाज़त विशिष्ट परिस्थितियों में देता है। नासिरा शर्मा की 'दूसरा कबूतर' 6 का बरकत बिना किसी मजबूरी या ज़रूरत के नाम बदल कर दूसरा विवाह करता है। सादिया से विवाह से पहले न पहली पत्नी रुकईया से इजाज़त लेता है और न सादिया को अपने विवाहित होने की बात बताता है। पुरुषीय अधिकारों की दुहाई देता वह अपने इस धोखे को अनुचित भी नहीं मानता। परिणामतः रुकईया तलाक की अर्जी देकर मेहर माफ कर तलाक़ ले लेती है और सादिया अपने अपमान का अदला बरकत को अपने विवाह का कार्ड भेजकर लेती है यानी दो मार खाई आहत औरतें ऐय्याशी की मानसिकता को ही तार-तार कर देती हैं। ऐय्याश मर्दों को तलाक़ के नवनिर्मित मूल्य ही राह पर ला सकते हैं। बौद्धिकता ने औरत को सही और गलत की पहचान दी है। दो औरतें मिलकर जैसे ही ग्यारह हुईं, पुरुष को उसके धोखाधड़ी, औरतबाजी का सिला मिल गया। यानी समझौते के मूल्य विद्रोह या विवेक के मूल्यों में परिणित हो रहे हैं।

सुधा अरोड़ा लिखती हैं " इस्लामी जुनूनियों को परदे की ऐसी सनक सवार है मानो उनका सारा इस्लाम परदे के भीतर आकर जकड़ गया है। मौलाना न उन्हें रोकते हैं, न कोई फतवा ही जारी करते हैं।" 7 पैराबन्द, रंगपुर (आजकल बांग्लादेश) में 1880 में जन्मी रुकईया सखावत हुसैन की कहानी 'सुलताना का सपना' मर्दों द्वारा औरत पर थोपे गए पर्दे का चित्रण फैंटेसी में करती है। जब भारतीय मुस्लिम पर्दानर्शी औरत के लिए यह सोचना भी शर्मनाक था कि वह बिना पर्दे के दिन दिहाड़े सड़कों पर निकलें, नायिका सुलताना जान सारा आपा के साथ एक ऐसे नारी प्रदेश में चली आती है, जहाँ न पाप है, न पीड़ा, न मर्दों का सामना होने का

खौफ, न बदी, न जुर्म, न न्यायालय। यहाँ सारे मर्दों को अन्दर बन्द करके रखा जाता है, क्योंकि औरतें तब तक महफूज हैं जब तक मर्द सड़कों पर न हों। नारी प्रदेश जानता है कि गलत हरकतें करने वालों को खुले छोड़ देना गुनाह है। सुलताना जान की ये पंक्तियां उन्हें अतार्किक और मूर्खतापूर्ण लगती हैं, “भारत में आदमी ही खुदा और मालिक है। उसने सारे हक और हकूमत खुद ले ली है और औरतों को ज़नाना में बन्द कर दिया है।”⁸ यहाँ सैन्य शक्ति का स्थान वैज्ञानिक शोध ने ले लिया है। इस नारी प्रदेश ने अपने उच्चतम नैतिक और बौद्धिक स्तर से कुदरत के हर उपहार को पा लिया है। यानी 1905में लिखी गई सुल्ताना की यह कहानी पर्दे के मानवीय मूल्य की अमानवीयता को बड़े सशक्त ढंग से बेपर्दा कर रही हैं। स्थिति का व्यंग्य यह है कि पुरुषों को संयम अथवा इन्द्रियों पर नियंत्रण सिखाने के बजाय औरतों को ज़नाने में डाल दिया जाता है। कैसे मूल्य हैं इस देश के, जो कहते हैं कि लड़की अगर किसी लड़के के छेड़ने की बात करे तो उसे संख्या देकर हमेशा के लिए सुला दो। डोली में से अंगुली दिख जाए तो धतूरा चटा दो।

इस्मत चुगताई की ‘लेडी किलर’⁹ का छप्पन वर्षीय चचा कादिर बेग दनदनाता जवान पट्टा बना फिरता है। भंगिन, धोबिन, चमारिन- उसे सब हलाल हैं। वह दिन रात लड़कों को लड़कियां फांसने, उनका बेड़ा गर्क करने के गुर समझाता है। कुश्तों के मिलने का पता बताता है। मर्दानगी बढ़ाने के नुस्खे देता है। सांडे के तेल की मालिश या तरह-तरह के तेल लगाने की तज़वीज़ देता है। उन रामबाणी कुकर्मों की शिक्षा पाए लड़कों में से जब एक लड़का उनकी ग्यारह वर्षीय लड़की से बलात्कार करता है, तो पता चलता है कि जीवन ऐय्याशी नहीं, मूल्य चेतना है। अजीब रिवायत है, “यानी एक तरफ तो कुत्ते लुसाए जाते हैं और दूसरी तरफ खरगोशों को महफूज रखने का हुकुम है, कोई अपने लड़के से नहीं कहता कि बेटा औरत की हिफाज़त तेरा धर्म है, तेरा ईमान है।” इस देश में का दिन बेग जैसे न जाने कितने हैं जो भोले-भाले युवकों के कच्चे मन में बलात्कार के लिए ज़मीन पैदा करते हैं।

जिसे आज हम दलित चेतना कहते हैं, दलित आक्रोश का नाम देते हैं, इन कहानीकारों ने उसकी गहराई में भी डुबकियां लगाई हैं। वाजदा

तबस्सुम की 'उतरन' 10. में शहज़ादी पाशाजिन और उन्हें बचपन में दूध पिलाने वाली अन्ना बी की बेटी चमकी हम उम्र हैं। सात वर्षीय चमकी यह सोच-सोच कर परेशान है कि उसे ही शहज़ादी पाशा की उतरन क्यों पहननी पड़ती है ? क्या शहज़ादी भी उसकी उतरन पहन सकती है ? उसे सारे खिलौने, जेवर, कपड़े उतरन में ही क्यों मिलते हैं ? शहज़ादी और चमकी दोनों बड़ी होती हैं और शहज़ादी की शादी का समय आता है। शहज़ादी की उतरन से चमकी की शादी होने की बातें भी चलती हैं। चमकी के अन्दर बैठी हीनता ग्रंथि इतनी बेकाबू हो जाती है कि वह शहज़ादी पाशा के मंगेतर से शारीरिक संबंध स्थापित करके सोचती है कि अब शहज़ादी भी जिंदगी भर उसकी उतरन इस्तेमाल करेगी, "मैं जिन्दगी भर आपकी उतरन इस्तेमाल करती आई, लेकिन अब आप भी.....मेरी इस्तेमाल की हुई चीज़ अब जिन्दगी भर आप भी.....।" उनकी 'जूठन' 11. कहानी में भी दलित जीवन का ऐसा ही दर्द है।

इस्मत चुगताई की 'हीरो' 12 उस घरेलू नौकर की कहानी है, जिसके अन्दर समाया नायकत्व सातवें आसमान को छूने की ललक रखता है। रसरुद्दीन को लोग सुख्खा बुलाते हैं। उसमें 'उतरन' की चमकी सा ही आभिजात्य सुस्ता रहा हैं। "वक्त मिलते ही वह नहा धोकर एकदम उजली कमीज पहन कर उर्दू की पौधी किताब लेकर बैठ जाता। यह वह समय होता जब वह नालियों और कीचड़ की दुनिया से बहुत ऊँचा उठकर विद्वानों की सोसायटी में पहुँच जाता। "उसे बावरची की बेटी अदिया नहीं, असगर की मंगेतर अपनी मालकिन हमीदा बी पसन्द है। हमीदा बी का काम करते समय वह ऐसी तन्मयता दिखता है, मानो मोक्ष प्राप्ति हेतु पुण्य कमा रहा हो। हमीदा बी की जूठी प्लेट में खाना उसे अच्छा लगता है, किन्तु असगर के लिए मन में बैठी नफरत एक रोज कुछ ऐसे निकलती है कि उसे नौकरी से हाथ धोने पड़ते हैं। 'उतरन' की चमकी हो या 'हीरो' का सुख्खा- दोनों आत्मदमन के मूल्यों से इन्कार कर रहे हैं।

'ज़रा सी बात' 13. में इस्मत चुगताई संवैधानिक मूल्यों की मूल्यवत्ता एवं न्याय क्षमता पर प्रश्नचिन्ह लगा रही है। हमारा माशरा यह मानकर चलता है कि पति औरत को बालों से पकड़े या पुराने चीथड़े की तरह पटके- यह उनका वैयक्तिक मामला है। कोई सामाजिक मूल्य इसमें हस्तक्षेप

करने की बात नहीं करता। 'ज़रा सी बात' पति-पत्नी संबंधों में समाए वीभत्स रस की कहानी है। "जोगिन्दर रक्खी को वालों से पकड़े पुराने चिथड़े की तरह झटक रहा था। रक्खी के जिस्म पर उसकी मसली हुई खाल के सिवाय कुछ न था। नकसीर फूटकर गाढ़ा-गाढ़ा खून छाती की उठान गिरान पर बहता हुआ घुटनों तक टपक रहा था। जहाँ कभी उसका सोंधा सोंधा मुंह हुआ करता था, वहाँ सिर्फ एक गोश्त का लाल लोथड़ा था। जोगिन्दर उसका सिर पाये पर पटक रहा था। रक्खी की दायें हाथ की हड्डी टूटकर बाहर निकल पड़ी थी। जब सहारे के लिए वह ज़मीन को पकड़ने लगती तो उसका छूलता हुआ हाथ पीछे को हट जाता और हड्डी कच्ची मिट्टी के फर्श में धंस जाती।" इस्मत स्पष्ट संकेत देती हैं कि मूल्यवत्ता विवाह पूर्व प्रेम संबंधों में ही हो सकती है, दाम्पत्य बाध बकरी का खेल है। बचपन के साथी गोपाल को रक्खी का रोज़ पिटना सहन नहीं होता, वह भावुक आवेशों में जोगिन्दर का गला दबा देता है। कानून की नजरों में उसकी सज़ा सिर्फ फांसी है। क्योंकि पत्नी का पिटना और पति का पीटना हमारे यहाँ कानूनी घेरे या मूल्यों से बाहर की बातें हैं। इसके बावजूद हम सिर उठा उठा कर दाम्पत्यगत मूल्यों का ढिंढोरा पीटते हैं।

कहानियों में अति का दूसरा ध्रुव भी मिलता है, जहाँ पैसा जिधर चाहे समाज की नकेल मोड़ सकता है। 'सोने का घूंट' 14. की लीना खुले आम मूल्यों का अतिक्रमण कर रही है। 'ज़रा सी बात' के जोगिन्दर सिंह की तरह दाम्पत्य की शालीनता उसके लिए कोई अर्थ नहीं रखती। किसी बदनामी का उसे डर नहीं। वह मूल्य मीमांसा से बहुत आगे की औरत है। अनेक शादियां रचा चुकी है, क्योंकि उसका पिता मल्टी मिलेनियर है। तलाक़ के बाद वह पुराने पतियों को नौकरी से नहीं निकालती। यानी वह सिर्फ दिल तोड़ती है, किसी के पेट पर लात नहीं मारती। शोहरों की लत से ज्यादा उसे ब्याय फ्रैंडज़ की लत है। पाँच पति छोड़ चुकी है। बेटा माँ के यहाँ पल रहा है। कोई उसका पानी बन्द नहीं कर सकता। क्योंकि उसके पापा के पास न हुक्कों की कमी है, न पानी की। समाज की नकेल ऐसे वालों के हाथ में रहती है, जिधर चाहे मोड़ लें।" इस्मत चुगताई हिंदुस्तानी लेखिकाओं में सबसे बलंट और बेखौफ आवाज़ के तौर पर उभरी.....। इन्होंने धर्म नैतिकता और तहज़ीब के पाले हुए उन मूल्यों

को पूरी ताकत, व्यंग्य और तिरस्कार के साथ आलोचना का विषय बनाया, जिनमें विलास कक्षों का संरक्षण है और जो लिंग व यौन शोषण पर समाप्त होते हैं।,

मुस्लिम रवायतों के अनुसार शादी के बाद शौहर को मेहर देना होता है, अन्यथा वह दुल्हन को छू नहीं सकता। जबकि सच्चाई यह है कि कोई भी शौहर कभी मेहर नहीं देता। अगर दुल्हन मेहर पर अड़ जाए तो शीबा फहमी की कहानी 'मेहर' की शाइस्ता की तरह उसकी शादी टूट जाती है। हर दुल्हन को मेहर माफ करना ही पड़ता है। यानी मेहर का मूल्य पुरुष समाज अपने फायदे के लिए पहले ही निगल लेता है।

विभाजन ने भले ही सीमा रेखा खींच दी हो, पर हिन्दू और मुस्लिम जीवन पद्धति, भाषा और मुहावरे में ज्यादा अन्तर नहीं है। कुर्रतुल-एन-हैदर 'देश निकाला' 17. में लिखती हैं "दोनों की भाषा और मुहावरे एक थे। मुसलमान बच्चे वर्षा होने की दुआ माँगने के लिए मुँह नीला पीला किए, गली गली टीन बजाते फिरते और चिल्लाते - 'बरसों राम धड़ाके से बुढ़िया मर गई फाके से, गुड़ियों की बारात निकलती तो जाप किया जाता 'हाथी घोड़ा पालकी, जय कन्हैयालाल की।' पर्दा करने वाली मुसलमान औरतें, जिन्होंने सारी उम्र किसी हिन्दू से बात नहीं की थी, रात को जब ढोलक लेकर बैठती तो लहक लहक कर गाती - 'भरी गगरी गोरी ढरकाई श्याम।' कृष्ण कन्हैया के इस वर्णन से इन लोगों के इस्लाम पर काई आँच नहीं आती थी।'

इन मुस्लिम कहानीकारों में एक नाम फहमीदा रियाज़ का जोड़ना जरूरी लग रहा है। वे पाकिस्तानी होकर भी भारत में आती जाती रहती हैं। ज़ियाउलहक के सैनिक प्रशासन के दौरान उन्होंने काफी समय के लिए भारत में शरण ली थी। उनकी 'हंस' जुलाई 2004 में प्रकाशित कहानी 'पर्सनल एकाउंट' 18. स्पष्ट करती है कि औरत भारत की हो या पाकिस्तान की, सिख हो या मुस्लिम- उनको एक ही पैमाने से नापा जाता है। हमारे यहाँ मूल्य है कि बेटी की कमाई नहीं खाते। उसके घर का पानी तक नहीं पीते। फैसलाबाद की मंसूरा शादी के बाद इंग्लैन्ड की रेडीमेड कपड़ों की एक फैक्टरी में काम करने लगती है। यहाँ अनेक हिंदुस्तानी औरतें भी हैं। ये औरतें हिंदुस्तान में रहें, पाकिस्तान में या इंग्लैंड में- कोई

फर्क नहीं पड़ता। स्कूल में पढ़ाएं या फैक्टरी में काम करें उनका अपनी कमाई पर कोई हक् नहीं होता। पति सारी कमाई छिन कर घर की ज़रत नामक दोज़ख में झोंक देते हैं। उस पर इब्राहीम भाई जैसे अल्लाह का कानून बताने वाले धर्म/ मूल्य रक्षक भी तो हैं, जिनके अनुसार औरत बीमार माँ-बाप को दवा तक नहीं भेज सकती जबकि पति के नातेदारों के लिए भटक-भटक कर अच्छी से अच्छी खरीदारी करना और भिजवाना उसका कर्तव्य है। इब्राहीम भाई स्वयं अंग्रेज़ औरत से शादी कर सकते हैं। उससे बच्चे पैदा कर सकते हैं, पर किसी मुस्लिम औरत को अंग्रेज़ पुरुष के साथ नहीं देख सकते। कहानी की नायिका मंसूरा अंत तक आते-आते करीबी बैंक में अपना पर्सनल एकाउंट खुलवा नवमूल्यबोध की घोषण करती है।

अपनी सारी आधुनिकता, तरक्की और प्रश्न चिन्हों के बावजूद मुस्लिम महिला कहानीकारों ने ईश्वरीय अस्तित्व को अक्षुण्ण माना है। मुस्लिम समाज में धर्म सर्वोपरि है। अल्लाह का वजूद और नमाज़ उनकी जीवन शैली के अपरिहार्य अंग हैं। अल्लाह की दुआएं और अल्लाह की शुक्रगुजारी का जिक्र सर्वत्र मिल जाता है। इस्मत चुगताई की 'चौथी का जोड़ा' 19. में हमीदा बहन कुबरा कर रिश्ता पक्का होने की बार-बार दुआ मांगती है, "अल्लाह! मेरे अल्लाह मियां! अबके तो मेरी आपा का नसीबा खुल जाए। मेरे अल्लाह मैं सौ रकअत नफ़ल (नमाज़) तेरी दरगाह में पढ़ूंगी।"

महिला मुस्लिम कहानीकारों ने सिर्फ औरतों की समस्याओं को ही नहीं लिया, इन्होंने इससे आगे अस्तित्वगत, जिजीविषागत समस्याओं पर भी विचार किया है। सातवें दशक की कहानीकार मेहरुनिसा परवेज़ की कहानियां मूल्यहीनता में मूल्यों की खोज की कहानियां हैं। उनकी कहानी 'आखिरी कब्र' 20. कब्रिस्तान के तकियेदार उस रहमान की कहानी है, जिसके यहाँ मौत की भयंकर त्रासदी त्योहार सी खुशियां लेकर आती है। कमलेश्वर के अनुसार, "दुनिया के सबसे बड़े दुख मौत के लिए सहज ही विघटित होते मूल्यों की मजबूरी इस कहानी को भरपूर मानवीयता प्रदान करती है।" 21. कहानी मूलतः रहमान के स्वरक्षापरक मूल्यों से जुड़ी है। रहमान की लड़ाई अपने स्तर की है। वह कोई चंगेज या हिटलर नहीं है

जिसमें राज्य विस्तार की अदम्य लालसा मृत्यु के हादसे को खुशी कहती हो। उसके सारे मूल्य परिवार की जिजीविषा से जुड़े हैं। इन्हें हम जैविक स्वरक्षापरक मूल्य कह सकते हैं। हर खुदाई में उसे बीस रुपये मिलते हैं। पाँच कब्रों की खुदाई पर तो बेटी भी ब्याही जा सकती है। कफ़न की चादरों से पूरे घर के कपड़े बनते हैं और चढ़े दिनों वाली जवान बेटी घर बैठी हो तो उसका दहेज भी बन सकता है। क्या अन्तर पड़ता है— किसी के बच्चे का अकीका हो, मृत्यु हो या शादी हो। रहमान को तो हर ऐलान के पैसे मिलते हैं। हर ऐलान के पश्चात घर में गोश्त पकता है और घर भर चहक उठता है। ‘नई कहानियाँ’ अक्टूबर 1963 में प्रकाशित हाने वाली इसी कहानी ने मेहरुनिसा परवेज़ की गणना प्रतिष्ठित महिला कहानीकारों में कर दी थी। उनकी ‘सिद्धियों का ठेका’ 22 की रहीमन भी कब्रिस्तान के तकिएदार गम्फार की बीबी है। मुर्दों को नहलाते-नहलाते वह इतनी जड़ हो चुकी है कि अगर कोई कुछ कह दे तो झट से बोल उठती है “अरे बाद में तो हमीं से काम पड़े है।” घर के लोग जब रोते धोते हैं तो वह मुर्दे के कपड़े बटोरने में रहती है। खैरात में मिले चावलों को बेचती है। खाने को पीसकर बढ़ियां बनाकर बाज़ार में देती है। यानी पेशे के प्रति ईमानदारी भी एक मूल्य है, पर उसमें इतना रम जाना कि स्व के आगे कुछ दिखाई ही न दे— मूल्यहीनता है और यहाँ परवेज़ ने मूल्यहीन व्यक्ति की इसी जड़ता को स्वर दिया है।

रशीद जहाँ की ‘इफ्तारी’ 23. गरीबों की उज्ज्वलता और सफ़ेद पोशों के मटमैले पन का खाका खिंचती है। ‘इफ्तारी’ में एक स्थल पर रशीद जहाँ लिखती हैं, “इस मुहल्ले में ज्यादातर मुसलमान आबादी थी। इसके इलावा तीन मस्जिदें थीं। इन तीनों मस्जिदों के मुल्लाओं में एक तरह की बाजी लगी रहती थी कि कौन उन ज़ाहिल गरीबों को ज्यादा उल्लू बनाए और कौन उनकी गाढ़ी कमाई में से ज्यादा से ज्यादा हज़म करे।..... ये तीन बेकार और फिज़ूल इन्सान खानदान उन मन्नत करने वाले इन्सानों में इस तरह रहते थे जिस तरह घने जंगलों में दीमक रहती है। जो आहिस्ता-अहिस्ता घने जंगलों को चाटती रहती है। ये मुल्ला सफ़ेदपोश थे और उन्हें पालने वाले मैले और गंदे थे। ये मुल्ला साहेबान शरीफ़ज़ादे थे और यह मेहनतकश कमीनों में गिने जाते थे” यह

सफेदपोश धर्मगुरुओं के अवमूल्यित तौर तरीकों की कहानी है।

भूख पर जीलानी बानो की 'तमाशा' 24. दर्दनाक कहानी है। 'रोटी के लिए क्या इन्सान और क्या पशु पक्षी, सबको पता नहीं क्या-क्या करना पड़ता है। यहाँ एक भूखी लड़की सारे मुहल्ले में रोती फिर रही है। आदिल के सारे परिवार को नौकरानी की जरूरत है। माँ को किचन के काम के लिए, भाई जान को वासना पूर्ति के लिए, दादी को पिंडलियां दबवाने के लिए, अज़रा को साइकॉलोजी बघारने के लिए - पर उसे रोटी कोई नहीं दे सकता, सिर्फ तमाशा किया जा सकता है। "अज़रा ने रोटी पहले उस लड़की के नाक के पास छुआयी और फिर उसके सिर पर नचाने लगी, "ले रोटी खाएंगी" अज़रा ने उसकी लटकी हुई गर्दन ऊपर उठानी चाही, लेकिन सख्त शर्मिदा हुई कि वह बच्चों को कोई तमाशा न दिखा सकी।" भूख के जैविक मूल्य का यहाँ वीभत्स चित्रण है। भारत की महिला मुस्लिम कहानीकारों पर मूल्यों के संदर्भ में बात करते हुए उन्हें भाषाई या लिपिगत कठघरों में नहीं बांधा जा सकता। ये कहानीकार चिल्ला चिल्लाकर कह रही हैं कि बलि का बकरा सिर्फ औरत एवं गरीब को ही क्यों बनाया जाता है। परदा, औरतबाजी, बदचलनी और दोगलेपन से निजात बहुत ज़रूरी है, जबकि मेहर, ईमानदारी, आर्थिक समानता के मूल्य श्लाघनीय हैं।

बी-14, गुरुनानकदेव विश्वविद्यालय

अमृतसर-143005 (पंजाब)

कबीर साहित्य का समाज-दर्शन

प्रो० रामकली सराफ

साहित्य-रचना उसका बोधात्मक स्वरूप बराबर अपने युग के सामाजिक-आर्थिक संदर्भों से प्रभावित होता रहा है। कबीर साहित्य में समाज कैसे प्रतिबिम्बित हुआ, उनकी दृष्टि क्या रही है ? इसे हमें देखना है। समाज बहुत व्यापक सत्ता है, उसके सारे अन्तर्विरोधों, विसंगतियों को पूरी तरह प्रतिबिम्बित करना चुनौती भरा काम है। एक महाकाव्य रचयिता के लिए तो यह बहुत हद तक संभव है कि वह साहित्य - बोध की व्यापक सामाजिक प्रक्रिया को अपने में समेट ले, लेकिन एक मुक्तककार के लिए अपने दोहों साखी, रमैनी, पदों में समाज की जटिलता, बहुआयामी प्रक्रियाओं को समेटना अपेक्षाकृत मुश्किल काम है। लेकिन व्यापक सामाजिक सम्बन्धों की सौन्दर्यबोधीय, नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक जटिलता के ताने-बाने को कबीर ने रचनात्मक धरातल पर बखूबी स्वीकार किया। आध्यात्म चेतना तो निहायत वैयक्तिक अनुभूति है। आध्यात्मिक अनुभूतियों के मूल में समाज नहीं होता। पर सवाल खड़ा होता है कि क्या कोई साधना-पद्धति पूर्णतया समाज निरपेक्ष हो सकती है ? तो नहीं, साधनात्मक दार्शनिक पद्धतियों का भी समाज के साथ सम्बन्ध होता है। विभिन्न प्रतिक्रियाओं, दार्शनिक पद्धतियों सबका समाजशास्त्र होता है। इसका कारण भी समाज के भीतर मौजूद रहता है। इसलिए समाज पर उनका प्रभाव भी पड़ता है। कबीरदास ने अद्वैत, बौद्धों, सिद्धों, नाथों, वैष्णव धर्म, सूफी धर्म सबके प्रभाव को ग्रहण किया। लेकिन सारी साधना पद्धतियों के सम्मिश्रण के बावजूद उनकी अनुभूति अपनी है, सभी कुछ कबीरमय है, सबकी जीवित अनुभूतियां हैं।

यद्यपि कबीर की वाणी निगेटिव रुख लिए हुए है, यह उनकी खास शैली है। इसलिए स्टाइल भले ही नगेशन की हो पर उनकी अवधारणाएं सकारात्मक हैं। कबीर सीधे-सहज ढंग से सामाजिक विसंगतियों, अन्तर्विरोधों पर चोट करते हैं। नकार की यह चीख एक नये समाज के निर्माण की

ललक लिए हुए थी। ऊँच-नीच, जाति-पाँति, सम्प्रदाय जैसे खाँचों में बटे समाज की बाह्य और आन्तरिक असंगति उनकी चीख को तीव्र कर देती है, जहाँ वे तमाम मानवीय सम्बन्धों को नकारते नहीं वरन् यह उनके विक्षुब्ध मन का उद्वेलन था, जो मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठा दिलवाने का संकल्प लिए हुए था।

इस प्रकार कबीर का समाज-दर्शन और जीवन-दर्शन परस्पर अन्तर्सम्बद्ध है। दोनों के केन्द्र में मनुष्य जीवन है, जहाँ मनुष्यता और कबीर दोनों एक-दूसरे के पर्याय बन गये। ब्रह्म भी कबीर के यहाँ आध्यात्मिक चेतना मात्र का प्रतीक न बनकर सामाजिक जीवन-दर्शन बन जाता है। कबीर ने कर्मकाण्ड प्रधान धर्म की अपेक्षा सर्वव्यापक चैतन्य स्वरूप ब्रह्म की उपासना पर बल दिया, जो प्रत्येक प्राणी के भीतर मौजूद है। इस आधार पर वे सब प्राणियों को एक मानकर 'समरत्ववादी' दृष्टि, के हिमायती बन जाते हैं, जो मानव-मात्र से प्रेम करना सिखाता है। विशिष्ट वर्ग द्वारा अपनायी गई भाषा, ज्ञान, अनुभव और उपलब्धि सामान्य जन को पंगु बना रही थी, उनको लगता था मुक्ति के द्वार भी उनके लिए बंद हैं और दूसरी ओर मंदिर-मस्जिद में पाखण्डी पंडित और मुल्ला जनसाधारण को अपने कर्मकाण्डी विधानों से बरगलाकर उल्लू सीधा करने में लगे हुए थे। उनका कबीर साहब ने डटकर विरोध किया, जनता में आत्मबल और आत्मविश्वास पैदा किया। अकर्मण्य साधना के स्थान पर कर्म करते हुए साधना मार्ग पर चलने की सलाह दी। आत्मज्ञान के भाव को भरकर आत्मविकास के कार्य द्वारा उन्होंने आम लोगों के पुरुषार्थ को, विश्वास और संकल्प को पुनर्जीवित किया। इस क्रांतिकारी कृत्य के मूल में संत कबीर का निर्भीक व्यक्तित्व ही था।

कबीर ने मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखते हुए जाति, वर्ण, सम्प्रदाय के ऊपर मनुष्य को समान दृष्टि से देखा : 'जाति-पाँति पूछे नहीं कोय, हरि को भजे सो हरि का होय। बाह्याडम्बरों, पूजा, पाठ, जप, तीर्थ, गंगास्नान आदि का कबीर ने जमकर विरोध किया। सीधे-सादे सहज तर्कों के माध्यम से उन्होंने इन पर प्रबल आघात किया। इनके व्यंग्य बड़े चुभते हुए और जोरदार थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इनके व्यंग्यकार व्यक्तित्व को स्टीक ढंग से उपस्थित किया। इनके व्यंग्य तत्कालीन सामंती

समाज व्यवस्था पर तीखी चोट करते हैं। मूर्तिपूजा का खण्डन करते हुए लिखा : “पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूं पहार।”

इसी प्रकार मुल्लाओं और काजियों की धार्मिक रूढ़िग्रस्तता पर करारा प्रहार करते हुए कबीर ने उनको अपना निशाना बनाया: “कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई बनाय / ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय ।” अतः इन तंगदिल वैभिन्य पैदा करने वाले पागलों से स्पष्ट सवाल किया “दुई जगदीश कहाँ से आये, कहु कोने भरमाया / अल्लाह राम करीम, केशव, हरि हज़रत नाम धराया।” इन बातों का कोई जवाब तत्कालीन सामंती शोषकों के पास नहीं था। कबीर का यह विद्रोह मूल्यहीन विद्रोह नहीं था वरन निर्मल हृदय संत कवि के हृदय के सहज उद्गार थे, जहाँ वे सहज मार्ग से ईश्वर की निकटता पाने के हामी थे, ‘जिन्ह सहजैं हरि जो मिलै विभेद बुद्धि का वहाँ क्या काम?’

वस्तुतः कबीर मानव मात्र की एकता के कायल थे। विभेद की समस्त रेखाएं तो वर्ग-स्वार्थ से जन्मीं मनुष्य निर्मित है। विधाता के यहाँ कोई भेद नहीं, ‘एक जाति से सब उत्पन्ना को बामन को सूद्रा’ निश्चित ही जब ब्राह्मणों ने समाज में नियन्ता का पद संभला तो उसके मूल में श्रम-विभाजन ही रहा। वह अकर्मण्य बन अपने गूढ़ चिंतन को जनता की समझ में न आने वाली भाषा के माध्यम से शासक वर्ग की हिमायत करते हुए रखता था, क्योंकि यही वर्ग उसका भरण-पोषण करता था, सम्मान देता था और उच्च पद पर आसीन कर पूजता था। यही पुरोहित वर्ग गुरु के रूप में सामाजिक शिक्षा पद्धति का स्वरूप निर्धारित करता था, जिसमें जनता को राजा का सम्मान करने और पूजने की बात कहकर उनके ईश्वर होने का भ्रम झलाता था। उन्होंने ब्राह्मणों की तथाकथित उच्चता और जनविरोधी रूख पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखा है: “जो तू ब्राह्मण ब्राह्मेनि जाया, आन बाट हवै क्यों नहीं आया।” ब्राह्मण धर्म की इस कर्मकाण्डी जड़ता पर प्रबल आघात बुद्ध ने भी किया। ब्राह्मणों के गढ़ काशी में रहकर सारे विरोधों को झेलते हुए भी कबीर अज्ञान और असत्य के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने से डरे नहीं, आस्था और विश्वास के दृढ़ स्वर में लिखा ‘सो ब्राह्मण जो ब्रह्म विचारै।’ उन्होंने मुल्लाओं को अपना निशाना बनाते हुए लिखा - “जो तू तुरुक तुरुकिनी जाया, पेट सुन्नत क्यों न कराया।” मानव

मात्र एक है, कहीं कोई भेद नहीं। ऊँच-नीच, छुआछूत को धर्म ने कब और कहाँ पैदा किया यह बात संत कबीर की समझ में नहीं आती- “कहूँ धौं द्युति कहाँ से ऊपजी तबही छूत तू मानी / एकेँ पाट सफल बैठाए, द्युति लेत धौं काकी।” वहाँ तो सब एक ही विधि से उत्पन्न हुए हैं। सभी की धमनियों में एक ही रक्त प्रवाहित हो रहा है। सभी हाड़-मांस के बने हुए हैं। इस प्रकार उन्होंने जन्मना श्रेष्ठता को पाने के ऊँच-नीच वाले आचरण का विरोध कर सदाचरण पर बल दिया। हृदय साधना का यह प्रबल रूप उनकी मानवतावादी दृष्टि का चरम उत्स है। लोकधर्मी भक्ति का यह भास्वर रूप उन्हें जीव मात्र के प्रति हो रहे अत्याचार और पीड़ा के खिलाफ खड़ा कर देता है। ‘सबै जीव साईं के प्यारे’ जब साईं को सब जीव प्यारे हैं तो फिर हम ‘सब धरि’ को एक मानकर क्यों न चलें ?

यहीं एक अहम सवाल खड़ा होता है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद को नकारने वाले संत कबीर ने स्त्री और पुरुष में भेद क्यों किया ? उनके साहित्य में नारी की रचना कहाँ ठहरती हैं ? उसे मनुष्य के बाहर खड़ा क्यों किया ? नारी के प्रति जो निषेधात्मकता का रूख संत कबीर में दीखता है, अन्य पक्षों की तरह उसका सकारात्मक पक्ष उभरकर सामने नहीं आता। जबकि उनकी सामाजिक-दार्शनिक चेतना प्रगतिशील है, जो उनके युग का सच ही नहीं बाद के युग का सच भी बनी। आज भी उन पक्षों की सच्चाई को हम स्वीकार करते हैं, बल लेते हैं। लेकिन कबीर के इस सच का जितना आकर्षण है, उससे ज्यादा हमारे नारी होने की प्रतिबद्धता है जो बराबर प्रश्न खड़ा पर रही है कबीर के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण का सकारात्मक पक्ष क्या है ?

दरअसल हमारे यहाँ वैरागी संत पुरुष का जो भूल दर्शन रहा है कबीरदास भी लगभग उसी के कायल थे। उनके समकालिक सभी संतों ने ‘नारी’ को ‘माया’ के रूप में देखा है, जो साधक के साधना मार्ग में रोड़ा बनकर खड़ी हो जाती है, भटका देती है। यद्यपि कबीरदास के बारे में यह भी धारणा प्रचलित है कि उन्होंने विवाह किया था। निश्चित ही नारी से सम्बद्ध गृहस्थ जीवन की जो अनुभूतियाँ थी, नारी की उपयोगिता अनुपयोगिता के स्वयं भुक्तभोगी रहे होंगे। पग-पग पर बाधाएं भी झेली होंगी। कुछ लोग ये भी कहते हैं उन्होंने विवाह नहीं किया। यदि नहीं भी

क्रिया तो मनुष्य के प्रति जो उनकी खरी प्रतिबद्धता है उससे बाहर खड़े दीखने लगते हैं। नारी उनके मनुष्य से बाहर खड़ी ऐसा क्यों ? इसके मूल में उनकी साधक की वैयक्तिकता प्रधान रूप से झलकती है। उन्होंने लिखा : “एक कनक अरु कामिनी, विषकल किए उपाइ/देखें ही थैं विष चढ़े, खाएं सू मरि जाए।”

बड़ी सामान्य उक्ति है, जगत की वास्तविकता का निषेध कर रहे हैं। सोना और स्त्री दोनों त्यागी पुरुष को बांधती हैं। लेकिन यदि कहा जाए की स्त्री भी सोने के प्रति आकर्षित होती हैं तो भी सच है। पर कबीरदास धन-संपदा और स्त्री को समान रूप से देख रहे हैं। इसी प्रकार उन्होंने अन्यत्र लिखा - “सुदुरि तैं सुनि भाले, विरला बचै कोई / लोह निहाला अगनि में, जलिविल कोइला होय।”

इस प्रकार का ऐकान्तिक एकांगी दार्शनिक चिन्तन प्रायः साधकों के भीतर प्रतिबिम्बित होता है। कबीर के इस सामाजिक दर्शन की वैज्ञानिकता के बीच सच्चाई सिद्ध नहीं होती। दूसरे कबीर के युग में सामंती समाज में पैठी भोग-विलास की अतिशयता भी नारी के खिलाफ खड़ा करती है। उन्होंने ‘कामी नर के अंग’ में लिखा : “परनारी के रावणें औगुण है गुण नाहीं/ पार समंद में मछला केता बहि-बहि जाहिं।” संत कबीर जब यह लिखते हैं “नारी की झाँई पड़त अंधा होत भुजंग।” तो निश्चित ही वे नारी को ‘माया’ की भाँति ‘सांसारिकता’ के प्रतीक के रूप में देख रहे हैं, जहाँ वह साधक को अपने लक्ष्य से भटकाती है, अपने आकर्षण के पाश में बांधकर अंधा बना देती है, सच्चाई से अलग कर देती है अंधा तो इसमें नारी का जितना दोष नहीं है, उससे अधिक दोष उस भुजंग का है। भुजंग आंधा हो सकता है, भुजंगिनी अंधी हो सकती है। दोनों को दोष दें तो समाज बनेगा। काम नारी में नहीं है, काम कामी में है अपने में दोष देखना चाहिए।

यह कबीर के युग का अन्तर्विरोध था। साधक की ऊँचाई से देखें तो यह नारी ही नहीं सम्पूर्ण स्त्री-पुरुष जाति की सच्चाई हो जाती है। निश्चित ही नारी के प्रति कबीर नाथपंथी, योगियों और सिद्धों से भिन्न दृष्टिकोण लेकर चल रहे थे, जबकि उनका साधनात्मक रहस्यवाद शून्य, अनहदनाद, इड़ा-पिंगल, सुषुम्ना नाड़ी, अष्टचक्र, सहस्रदल कमल आदि

को स्वीकार करता है। कबीर परम्परित शास्त्रीयतावादी चिंतन माया, जीव, ब्रह्म, जगत् आदि से अत्यधिक प्रभावित रहे। यही वजह है नारी और माया दोनों ही कबीर के लिए भी ज्ञान पैदा करते हैं। अतः इनसे स्वयं को दूर कर वे साधना की ऊँचाई का संस्पर्श करते हुए 'सर्वब्रह्म' के ज्ञान की ओर मुड़ते हैं। ऐसा ब्रह्मब्रह्म जो किसी दार्शनिक विचारधारा से आबद्ध न होकर स्वानुभूतिपरक ही अधिक है, कहीं-कहीं वे सगुण व्यक्त ब्रह्म को भी स्वीकार करते हैं पर ब्रह्म का सूक्ष्म रूप ही उनको ग्राह्य है जो भावनामूलक इन्द्रियातीत है। गुरु से प्रेम का मंत्र ग्रहण करके ही वे भाव-साधना द्वारा भक्ति-साधना की ओर अन्मुख हुए। तन्मयावस्था को प्राप्त करने के लिए निरन्तर सुपथ की खोज में रत रहे। परमत्याग ही इस अवस्था का अधिकारी बनाता है: "सीस उतारि पगतलि धरै, तब चखै प्रेम का स्वाद।" इस प्रकार अन्तःकरण को शुद्ध कर साधक अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है, उसमें कोई भेदभाव स्वीकार नहीं। निःसंदेह कबीर की भक्ति प्रेममूलक भक्ति थी, जहाँ वे अपने को राम की बहुरिया, कहकर पुकारते हैं। एक ऐसी बहुरिय जो संत को अपनी आँखों में ढाँपकर रखती हैं, जिसे न कोई अन्य देखे और ना ही वह किसी को देखे: नैना अंतर आव तू ज्युँ हौ नैन झंपेउ / ना हौं देखन और कूँ, ना तुझ देखन देऊँ।

यह है सर्वव्यापक घट-घट वासी ब्रह्म जो सभी प्राणियों को एक स्तर पर स्थापित करता है। कबीर का 'सर्वब्रह्म ज्ञान' का यह दर्शन जो हिन्दू-मुस्लिम सामंती प्रथाओं के वर्चस्व से अलग अपने एक भिन्न मार्ग का निर्माण करता है, जो आध्यात्म से जुड़े होने के बावजूद सबके सम होने के भाव से सम्पृक्त है। ऐसा उच्चतर मानवीय संस्पर्श, जहाँ मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद नहीं है।

वस्तुतः कबीरदास जिस वैयक्तिक चिंतन की ओर झुके, उसका कारण तत्कालीन शासकों की निर्ममता, शोषकवृत्ति और हृदयहीनता ही रही। यही कारण है कि भौतिक-सामाजिक सत्य के स्थान पर उन्हें गुह्य साधना का आश्रय लेना पड़ा। सवाल खड़ा होता है कि वह प्रवृत्ति निम्न तबके से सम्बद्ध सिद्धों, नाथों में ही क्यों जन्मी? इसकी वजह क्या है? इसका सामाजिक मनोवैज्ञानिक कारण यही हो सकता है कि इस उत्पीड़ित वर्ग के पास कोई राजनैतिक विकल्प नहीं था, जिसके तहत वे अपनी

इच्छाओं, आकांक्षाओं को सामाजिक प्रतिष्ठा दिलवा पाते। इसी कारण ये अपने अन्तर्निहित सत्य की ओर अन्मुख हो गुह्य साधना में रह हुए और ऐसे दर्शन को स्वीकार किया जो सामाजिक समत्व पर बल देता था, जिसके मूल में प्रेम था। उन्होंने अपनी प्रेममूलक भक्ति के बल पर ही जनता की भावना को आत्मसात किया, उनके दुःख-दर्द को समझा। यह प्रेम ही उनके लिए समस्त बाह्याचारों से परे समाज के भेदभाव से लड़ने का धारदार औज़ार था। इसी प्रेममूलकत्व में समूचे भक्ति आंदोलन की आत्मा का बहाव देखा जा सकता है।

तद्युगीन शासक वर्ग के चारित्रिक वैशिष्ट्य से यह एकदम भिन्न बात थी कि वे सभी को समभाव से देखें। लोकभावना और लोकजीवन से जुड़ी ये बातें विशिष्टजन के विपरीत सामान्य जन को प्रिय होंगी, इस प्रकार सामाजिक-सांस्कृतिक धरातल पर अपनी बानियों के माध्यम से विशाल जनसमूह को एकजुट करने का विराट प्रयत्न कबीर ने किया। उनकी वाणी की संघर्षशील चेतना और प्रखर विद्रोही तेवर आज के अन्तर्विरोधी माहौल में भी प्रासंगिक है। उन्होंने जो कुछ भोगा उसमें केवल निज के अन्तर्विरोध को ही नहीं पहचाना वरन् अपने निजी अनुभवों के आलोक में व्यापक लोक से रिश्ता कायम किया। इस प्रकार मानव-मात्र की एकता के पक्षधर कबीर साहेब ने समस्त जातिगत, साम्प्रदायिक भेदों का खण्डन कर मनुष्य को मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठा दी।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कबीर का समाज-दर्शन मूलतः आध्यात्म-दर्शन के बावजूद समाज के जिन आयामों का संकेत करता है, वे संकेत आज की दुनिया में धर्मभेद, जातिभेद, देशभेद, राष्ट्रभेद और युद्ध की भयावहता से आक्रांत मानव जाति के लिए कितने प्रासंगिक, कितने ऊँचे, कितने गृहणीय और अर्थवान हैं।

हिन्दी विभाग,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रसाद की नारी विषयक अवधारणा

डॉ० जोगेश कौर

विश्व प्रवृत्ति नारी के रूप में मूर्त होकर नर के लिए चिरकाल से ही प्रेरणा का स्रोत रही है। प्राचीन भारत में नारी का कार्य क्षेत्र सीमित नहीं था, बीच में ऐसा समय आया कि नारी को केवल घर की चौखट तक ही सीमित रहना पड़ा, लेकिन आज फिर वह हर क्षेत्र में रही है।

वैदिक काल में प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में नारी की उपस्थिति आवश्यक थी। रामायण एवं महाभारत में 'नारी' का चरित्र भिन्न प्रकार का स्थापित हुआ। पुराणों में पतिव्रत धर्म को निभाने वाली नारी सर्वश्रेष्ठ मानी गई। मौर्य, गुप्त और हर्षवर्धन के समय में भी नारी की शक्ति का आभास एवं महत्व समाज में दृष्टिगोचर होता रहा है। मुगलकाल में स्थिति भिन्न हो गई। नारी को केवल भोग विलास की वस्तु ही मान लिया।

भारतेन्दु युग में नारी की समता की स्थापना होती दिखाई दी। युग के साथ साहित्य भी प्रगतिशील रहता है। प्रत्येक युग में धारणाएं बदली, विचार बदले व नारी का स्पष्ट रूप सामने दिखाई देने लगा।

भारतीय नारी के चरित्र में राष्ट्रीयता, प्रेम एवं त्याग की भावना सदैव रही है। पारिवारिक उत्तरदायित्व के साथ अन्य भूमिकाएं भी निभाने की शक्ति सदैव उसमें रही है।

भारत के हिन्दी साहित्य में नारी के भिन्न रूपों को समय-समयानुसार देखा जा सकता है। आधुनिक काल के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि एवं लेखक जयशंकर प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य में नारी के भिन्न मनमोहक, साहसिक एवं प्रतिष्ठित रूप दिखाई देते हैं। प्रसाद की कविता, नाटक, कहानी एवं उपन्यासों में नारी का आधुनिक रूप परिस्थितियों के अनुसार प्रस्तुत हुआ दिखाई देता है। गद्य एवं पद्य दोनों ही क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने वाले इस साहित्यकार के विषय को चन्द पृष्ठों में समेट पाना कठिन कार्य है।

“प्रसाद की सम्पूर्ण विचारधारा के पीछे उनका मानवीय स्वर है।

जीवन के शाश्वत उपादानों को लेकर उन्होंने काव्य का निर्माण किया। कलाकार जीवन के जिन अंशों का अंकन करते हैं, वे विविध और निरुत्तन होते हैं। समाज और युग परिवर्तित होते हैं, किन्तु मानवीय भावनाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं आता। सुख-दुख, प्रेम-घृणा, जीवन-मरण आदि की मान्यताएं बनी ही रहती हैं। जो रचनाकार जितना अधिक महान होता है, वह उतनी विस्तृत समस्याओं पर विचार करता है।”¹

डॉ० सूरजपाल के शब्दों में, “प्रसाद का व्यक्तित्व अत्यन्त भव्य एवं सुदर्शन था। उज्ज्वल गौरवर्णी काया वाले प्रसाद के चेहरे से तेज टपकता था। वेशभूषा साधारण किन्तु सुरुचिपूर्ण होती थी। ”²

कहने का तात्पर्य यह है कि साधारण विचार, साधारण वेश-भूषा लेकिन विचार सुलझे, प्रौढ़ एवं उच्चकोटि के। मानवीय भावनाओं को समझने वाले थे।

प्रसाद की साहित्यिक पत्रिका ‘इन्दु’ का प्रकाशन आरम्भ होने से ही साहित्यकार के जीवन का लक्ष्य समझ में आ गया था।

प्रथम अंक की प्रस्तावना अगर पढ़ें तो ज्ञान होगा “साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नहीं होता है और उसके लिए कोई विधि का निबन्तन नहीं है, क्योंकि साहित्य में स्वतंत्र प्रकृति, सर्वत्रोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है, वह किसी भी परतंत्रता को सहन नहीं कर सकता। संसार में जो कुछ सत्य और सुन्दर है, वही साहित्य का विषय है। आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और स्वतन्त्र आलोचना में उसकी सत्ता देखी जा सकती है।”³ सम्पादक एवं प्रकाशन अम्बिका प्रसाद गुप्त ने प्रस्तावना में लिखा था। ‘इन्दु’ प्रकाशन के साथ-साथ ही प्रसाद विकास के साथ-साथ अपने पथ पर अग्रेषित होते चला गया। प्रसाद की रचनाओं की खूबी निम्नलिखित है:

- काव्य- 1. करुणालय (1931)
2. कानन कुसुम (1931)

-
1. प्रसाद धवस्वामिनी (नाटक की भूमिका में से)
 2. डॉ० सूरजपाल, प्रसाद का जीवन दर्शन: कला और कृतियां, पृष्ठ 6
 3. दुपत्रिका - शुक्ल श्रावण सन् 1909 ई० में प्रकाशित

3. प्रेमपथिक (1914)
4. महाराणा का महत्व (1914)
5. चित्राधार (1918)
6. झरना (1918)
7. आंसू (1925)
8. लहर (1933)
9. कामायनी (1936)

- नाटक-
1. सज्जन (1910)
 2. कल्याणी परिणय (1912)
 3. राज्यश्री (1914)
 4. विशाख (1921)
 5. अजातशत्रु (1922)
 6. कामना (1922)
 7. जन्मेजय का नागयज्ञ (1926)
 8. स्कन्दगुप्त (1928)
 9. चन्द्रगुप्त (1930)
 10. ध्रुवस्वामिनी (1930)

एकांकी-1. एक घूंट

- कहानी संग्रह-
1. छाया (1912)
 2. प्रतिध्वनि (1926)
 3. आकाशदीप (1929)
 4. आंधी (1933)
 5. इन्द्रजाल (1936)

- उपन्यास-
1. कंकाल (1929)
 2. तितली (1934)
 3. इरावती (अपूर्ण)

निबन्ध- काव्य-कला तथा अन्य निबन्ध।

इसके अतिरिक्त उर्वशी चम्पूकाव्य और अग्निमित्र नाटक की भी रचना की। 'अग्निमित्र' अपूर्ण है।

प्रसाद की साहित्य यात्रा के संकेत मात्र के पश्चात नारी चेतना का स्वरूप यहां समझने का प्रयास करेंगे। इसके पश्चात मूल शोध- विषय उपन्यासों में नारी विषयक अवधारणा पर टिप्पणी करने का प्रयास करूंगी।

नारी चेतना स्वरूप :

उन्नीसवीं शताब्दी में ही सक्रिय रूप से नारी-चेतना एवं नारी के प्रति अवधारणा में परिवर्तन आया। नारी कल्याण से जुड़े जितने भी आन्दोलन हुए उनका प्रत्यक्ष प्रभाव सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक, आर्थिक और नैतिक सभी पहलुओं पर पड़ा। नारी की पारिवारिक एवं सामाजिक विषमताओं को लेकर समाज-सुधारकों ने प्रयत्न सदैव जारी रखे और परिणामस्वरूप नारी चेतना एवं नारी के प्रति अवधारणा का स्वरूप बदला। इसका स्पष्ट गतिशील विकास इतिहास एवं साहित्य में देखा जा सकता है। साहित्य की चाहे वह कोई भी विधा हो।

समाज का निरन्तर विकास की प्रक्रिया में समाज के बदलते मूल्य, मापदण्ड, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्थाएं- तथा नवीन आदर्श ने नारी की स्थापना में नारी की स्थिति के उतार-चढ़ाव के लिए उत्तरदायी रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में कविता के साथ-साथ अन्य गद्य-विधाओं का उद्भव एवं विकास हुआ है। हिन्दी उपन्यास गद्य की लोकप्रिय विधा रही है। हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ प्रेमचन्द के उपन्यासों से माना जाता है। नारी के गतिशील एवं स्वाभाविक रूपों का चित्रण उनके उपन्यासों में देखा जा सकता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी पात्रों के प्रति सहानुभूति दिखती है। उनके उपन्यासों में नारी-विषयक धारणा अनेक दिशाओं में विकसित होती दिखाई देती है।

नारी मुक्ति, संघर्ष, रूढ़ियां, कतिपय समस्याओं से विमुक्त होने के लिए साहसिक प्रयत्न इस समय के प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्पष्ट दिखाई देते हैं।

प्रेमचन्द का विश्वास था, “जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है, चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत या वकालत करना साहित्यकार का फर्ज है।”¹ तत्कालीन परिस्थिति प्रभावित होना आसश्यक था। वे

नारी का समाज-स्वीकृत रूप ही स्वीकारते रहे। उनकी समस्याओं का चित्रण एवं निरीक्षण भी सामाजिक संदर्भ में करते रहे।

उपन्यासों की श्रृंखला में दूसरा बड़ा नाम जयशंकर प्रसाद का है जो भिन्न गद्य-विधाओं में लिखते रहे।

प्रसाद की साहित्य रचना के समय में नारी की स्थिति दयनीय एवं चिन्ताजनक थी। नारी का शोषण किया जा रहा था। बाल विवाह, अनमेल विवाह, बहु-विवाह की प्रथा जारी थी।¹

प्रसाद के काव्य एवं नाटकों में नारी पात्रों का चित्रण अधिक तन्मय, कौशलपूर्ण किया गया है। बीसवीं सदी एवं उसका तीसरा दशक और उसके आरम्भ में भारत में गांधी जी की विचारधारा का प्रभुत्व बढ़ा। नारी वर्ग ने राजनीति में भाग लेने की प्रेरणा पाई और अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई।

‘रंगभूमि’ की सोफिया विनय के राष्ट्रवादी आदर्शों से आकर्षित होकर स्वत्व का समर्पण करती है। रानी जान्हवी राष्ट्रप्रेम के लिए अपने वात्सल्य का बलिदान करती है। ऐसे राष्ट्रप्रेम से प्रेरित प्रेमचन्द के नारी-पात्र, पुरुष वर्ग के लिए प्रेरणा का स्रोत बने।²

अंग्रेजी हकूमत के आने से भारत के इतिहास में एक नया युग आरम्भ हुआ। नारी-शिक्षा और सामाजिक विचारों में परिवर्तन आने लगा। “पश्चिम की एक जीवित जाति के सम्पर्क में आकर अन्धपतित देश के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन को जो झटका लगा उससे वर्षों से अलसाये हुए जीवन में नवस्फूर्ति और चेतना का संचार हुआ।³

प्रसाद के महाकाव्य ‘कामायनी’ की नायिका ‘श्रद्धा’ भी इसी कोटि की नारी है। ‘श्रद्धा’ विश्वास, त्याग एवं सौन्दर्य की मूर्ति है। विश्वबन्धुत्व का मूर्तिमान प्रतीक है। वस्तुतः ‘श्रद्धा’ के स्वरूप को प्रसाद ने अपने नारी विषयक दृष्टिकोण को विस्तृत रूप से अंकित किया।

“नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।

पीयूष स्रोत सी बहा करे, जीवन के सुन्दर समतल में।”⁴

1. लक्ष्मीसागर वाष्णीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ 10

2. प्रेमचन्द, रंगभूमि भाग-1, पृष्ठ 67

3. लक्ष्मीसागर वाष्णीय, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ 10

4. प्रसाद, कामायनी (श्रद्धासर्ग)

प्रसाद नारी के मंगल रूप के उपासक रहे हैं। भौतिक एवं आध्यात्मिक आनन्द का मार्ग दर्शाने वाली भी नारी ही है, ऐसा उनका मानना है। 'रहस्य सर्ग' में कामायनी महाकाव्य का सम्पूर्ण रहस्य स्पष्ट दिखाई देता है।

प्रसाद के विषय में अवमानना है कि पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों का चित्रण अधिक सशक्त एवं सजीव है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में यह उक्ति खरी उतरती नज़र आती है। हृदय से प्रसाद नारी जाती के प्रति उदार रहे हैं। कामायनी' महाकाव्य नारी की शक्ति और क्षमता को रेखांकित करने हेतु ही लिखा गया। प्रसाद मूलतः कवि थे। उनके नाटकों, उपन्यासों, कहानियों में उनका कवि रूप ही प्रकट होता है। कवि प्रेम व सौन्दर्य का उपासक होता है। प्रसाद की अधिकांश कविताएं नारी पर ही आधारित हैं। उनके प्रमुख काव्य लहर, आंसू, कामायनी में नारी-पात्र प्रधान ही है।

प्रसाद ने नाटकों में भी पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों का व्यक्तित्व विशेष रूप से चित्रित किया है।

प्रसाद ने नारी के महत्व एवं गरिमा को बनाए रखने के लिए अनेक वचन कहे लेकिन एक वचन तो लोकोक्ति समान प्रसिद्ध हो गया-

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो।

प्रसाद के साहित्य में नारी के शाश्वत रूप दिखाई देते हैं। माता के रूप में, सघर्षरत नारी के रूप में, पुत्री के रूप में, बहिन के रूप में, पत्नी के रूप में, आदिशक्ति के रूप में। उदाहरणतः "अर्थ और काम दो पाटों के बीच शताब्दियों से नारी पिसती चली आयी है। देश की स्वतन्त्रता नारी जागरण और शिक्षा के प्रसार के बावजूद उसका शोषण रुका नहीं। शोषण का स्वरूप भर बदल गया।"¹

इसी तरह, "युग की नयी बौद्धिक विचारधारा के फलस्वरूप विवाह न केवल एक सामाजिक और वैयक्तिक समझौते के रूप में देखा गया वरन् विवाह संस्था की आवश्यकता पर भी सन्देह प्रकट किया जाने लगा।"²

1. हिन्दी उपन्यास के 25 वर्ष, पृष्ठ 497

2. शशीगुप्ता प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास: नये नैतिक मूल्य, पृष्ठ 76

प्रसाद के उपन्यासों में 'कंकाल' में 'घण्टी' वृन्दावन की कुख्यात बाल-विधवा है। वह निरुदेश्य ही घूमती है तथा समाज उसे हेय दृष्टि से देखता है एवं कोई स्थान प्रदान नहीं करता।

इसी तरह 'तितली' में मधुवन की विधवा बहिन राजो सुखदेव चौबे की शारीरिक तुष्टि का साधन बनते-बनते बचती है। इतना ही नहीं अज्ञात नाम महन्त भी उससे बलात्कार करना चाहता है। विधवाएं चाहते हुए भी आभूषण एवं सुन्दर वस्त्र धारण नहीं कर सकती हैं।¹

प्रसाद की सभी रचनाओं में नारी-पात्र मुखरित हुए हैं। जिस समय प्रसाद साहित्य रचना में जुटे थे, उस समय नारी की दशा दयनीय एवं शोचनीय थी। बहु-विवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा आदि कुरीतियां समाज में विद्यमान थीं। इसी कारण प्रसाद के हृदय में नारी के प्रति विशेष भावना थी उसे आदर और श्रद्धा के दृष्टिकोण से ही देखा।²

प्रसाद के नाटकों, उपन्यासों कहानियों में उनका कवि रूप उभरता दिखाई दिया, दूसरा नारी-पात्रों के प्रति विशेष सहानुभूति दिखाई देती है।

प्रसाद के सभी पात्र लगभग प्रणय भावना के प्रबल प्रचारक और मुक्त भोग में विश्वास रखते हैं। विवेच्य उपन्यासों में नारी-चित्रण की अनेक सामाजिक समस्याओं के अतिरिक्त प्रेम समस्याएं भी उभर आई हैं। 'प्रेम' व्यक्ति की स्वच्छन्द मनोवृत्ति है। उस पर किसी का दबाव नहीं डाला जा सकता। जीवन में प्रेम, सरसता और स्निग्धता का कोमल स्पर्श इन पात्रों का ध्येय और धर्म है।"³

नारी अनन्तकाल से समाज की शक्ति तथा उपन्यास की मुख्य धुरी रही है, प्राण रही है। उपन्यासकार समाज व सामाजिक प्रभाव से अछूता नहीं रह सकती। नारी समाज का मेरुदण्ड है। अतः उसकी नारी सम्बन्धी अनुरागात्मक अथवा घृणात्मक भावना तत्कालीन राजनैतिक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर बनती हैं या यूँ कहना चाहिए कि राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक कारणों से समाज में जो अवस्था नारी की होती है, उसी का प्रतिबिम्ब कवि की नारी भावना होती है।

1. प्रसाद, तितली, पृष्ठ 182

2. वही, पृष्ठ 160

3. उर्मिला देवी शर्मा, प्रसाद साहित्य की समीक्षा, पृष्ठ 127

प्रसाद के नाटकों में भी पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों का चित्रण विशेष एवं महान कला का द्योतक है। नाटकों में नारी की महिमा का गुणगान यत्र-यत्र बिखरा पड़ा है।

प्रसाद के उपन्यासों में नारी समाज का अभिन्न अंग स्वीकारा गया है। नारी समाज में सांस्कृतिक इतिहास में नए पन्ने जोड़ती रही है। नारी अबला नहीं सबला दिखाई गई है।

नारी समाज के प्रति प्रसाद के दिल में सहानुभूति है। 'कंकाल' उपन्यास में तारा, जिसका दूसरा नाम आगे चलकर यमुना हो जाता है, उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र है। विधवा ब्राह्मणी रामा के गर्भ से उत्पन्न संतान तारा भी देव निरंजनी और रामा के अनुचित सम्बन्धों का परिणाम है।

'कंकाल' उपन्यास की नारी पात्रा 'तारा' के जीवन में आने वाली अनेक परिस्थितियां दर्शाई गई हैं।

'तितली' उपन्यास की पात्रा तितली का भी मत्वपूर्ण स्थान सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। तितली कुलीन परिवार की पतिव्रता स्त्री है। 'मैना' दूसरी नारी पात्र की वजह से तितली व उसके पति के बीच शक पैदा हो गई। मधुवन के जाने के बाद साहस के साथ लोकापवाद सहे। शैला उदार हृदय वाली नारी है जो भारत आकर समाज सेवा में जीवन व्यतीत करती है। 'तितली' की सहायता का प्रयास करती है।

प्रसाद के नारी पात्रों के विषय में पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के अनुसार- "स्त्री पात्रों को व्यक्तित्व और चरित्र सभी रूपकों में बड़ी तत्परता और कौशल से अंकित है।"¹

अगर मनोवैज्ञानिकता के आधार पर देखा जाए तो हृदय का विशेष धर्म है- भावप्रवणता और उसके साथ त्याग, सेवा, उदारता और विश्वास का अखंड योग होना भी आवश्यक है। भावुकता और कोमलता की विचारधारा से ही आत्मसम्मान का भाव जागृत होता है।

इसी के सशक्त उदाहरण के रूप में प्रसाद के साहित्य में नारी पात्रों में प्रेम, आत्मसमर्पण, त्याग, कोमलता आदि सामान्य शक्तियां पाई गई हैं।

1. पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नारी पात्र

प्रसाद के नाटकों में नारी पात्र उभरे हैं। शील, शक्ति और औदात्य के प्राणवत विग्रह है। ऐतिहासिक प्रसिद्ध पात्रों में भी नारी पात्रों को विशेष रूप से उभारने का प्रयास जारी रहा।

प्रसाद के उपन्यासों में नारी विषयक अवधारणा भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। प्रसाद सच्चे साहित्यकार के उत्तरदायित्व को यथार्थवाद और आदर्शवाद एवं भारतीयता से ऊंचा मानते हैं।

प्रसाद का स्वयं का मत है, “साहित्यकार न तो इतिहास कर्त्ता है और न ही धर्मशास्त्र प्रणेता। इन दोनों के कर्तव्य स्वतंत्र हैं। साहित्य इन दोनों की कमी को पूरा करने का काम करता है। साहित्य समाज की वास्तविक स्थिति क्या है? इसको दिखाते हुए भी उसमें आदर्शवाद का सामंजस्य स्थिर करता है। दुःख दग्ध जगत और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है।”¹ प्रसाद की इसी विचारधारा के परिणाम स्वरूप उनके उपन्यास, हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों की कड़ी में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। यथार्थ एवं आदर्श नारी का मिश्रित रूप प्रसाद के उपन्यासों में उभर कर आया है।

‘कंकाल’ उपन्यास में नारी की कमजोरियों और विकृतियों को प्रस्तुत किया गया है। इसमें सामाजिक व्यंग्य तीखे हैं। रूढ़ियां, विकृतियां जो समाज में विद्यमान हैं उनका खुलकर चित्रण करते हुए विरोधात्मक दृष्टिकोण दिखाता है। हिन्दू प्रतिक्रियावाद के गढ़ वर्ण-व्यवस्था को लेकर एक बड़ा विद्रोह खड़ा हुआ है। इस उपन्यास के कथ्य में, नारी वृत्ति का परिहास दिखाया गया है।

‘तितली’ प्रसाद का दूसरा महत्वपूर्ण एवं चर्चित उपन्यास है। यह सामाजिक उपन्यास है। पारिवारिक समस्याओं पर आधारित रचना है। भारतीय गांवों की चर्चा एवं नारी की प्रमुख समस्याओं को मुख्य विषय बनाया है आरम्भ से अंत तक आदर्श एवं यथार्थ का सम्मिलित रूप दिखाई देता है निम्नवर्ग के समाज का नग्न चित्रण का समाज में फैली स्थिति का जायज़ा भी प्रदर्शित किया गया है। “लेखक का व्यक्तित्व कहीं पूर्वाग्रह से पीड़ित उपदेवश के रूप में उपन्यास कला पर भार गिरता, यही ‘तितली’ की सफलता का रहस्य है।”²

1. चित्रा शर्मा, संस्कृत नाटकों में सामाजिक चित्रण, पृष्ठ 8

2. मार्कण्डेय सिंह, प्रसाद का कथा साहित्य, पृष्ठ 169

‘इरावती’ अधूरा उपन्यास है एवं 1936 में प्रकाशित हुआ। ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें मौर्यवंश के पतन एवं शक दश का प्रार्दुभाव ही इसका ऐतिहासिक आधार हैं इसकी सभी मुख्य-मुख्य घटनाएं, सभी पात्र और संदर्भ ऐतिहासिक मूल के ही हैं। कुछ काल्पनिक पात्र भी हैं जैसे धनदत्त और मणिमाला।

नारी समाज का अभिन्न अंग है। प्रसाद ने नारी स्थिति, मनःस्थिति, परिस्थिति और अनेकाएक सामाजिक मोह, सांस्कृतिक प्रभाव से एक नए युग का इतिहास रचा है। तय कर दिया कि नारी पुरुष की आवश्यकयता है, पुरुष नारी की। सामान्यतः प्राचीन साहित्य में नारी का विवेचन दर्शन के आधार पर होता रहा। 20वीं सदी में स्थितियां बदली, समाज की सोच में बदलाव आया। इसी परिणाम स्वरूप नारी की स्थिति को सुधारने का प्रयास प्रसाद जैसे साहित्यकारों ने बखूबी किया। प्रयास के लिए नारी का उपेक्षित जीवन रुचिकर नहीं था। जीवन की भिन्न समस्याओं का चित्रण कर उनका समाधान ढूंढने का प्रयास ‘प्रसाद’ ने किया।

नारी की सुरक्षा, सम्मान, वैधव्य, वैश्यवृत्ति, सती प्रथा, घुंघट प्रथा आदि पर विशेष ध्यान दे, इसे मूल से उखाड़ देने का प्रयास साहित्य के माध्यम से किया। कविता, नाटक, उपन्यास एवं कहानियों के माध्यम वास्तविकता को सामने ला खड़ा किया।

“वर्तमान युग में विधवा समस्या ने नारी के अमानुषिक शोषण को बहुत अधिक बल दिया है। वस्तुतः नारी का सर्वाधिक शोषण विधवा प्रथा के द्वारा ही हुआ है।”¹

“समाज नारी मुक्ति चाहता है। प्रसाद के विचारानुसार स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की पीठिका पर प्रस्तुत दोनों सम्मान की पीठिका पर अधिकार, समान सम्मान, समान कार्यक्षेत्र और समान स्थिति का उपभोक्ता होना आवश्यक है।”²

‘कंकाल’ का समाज इसके विपरीत दिखाई पड़ता है। यहां भक्ति को अधिकार तथा स्वतंत्रता है, किन्तु नारी उसके अधीन है। वह पुरुष की दासी, गुलाम तथा स्वार्थों की साधिका है।⁴

1. प्रसाद, कंकाल, पृष्ठ 17

2. उर्मिला देवी शर्मा, प्रसाद साहित्य और समीक्षा, पृष्ठ 129

3. गंगाप्रसाद पाण्डेय, प्रसाद प्रतिभा में संकलित निबन्ध, पृष्ठ 100

‘प्रसाद’ उपन्यासों में वेश्यवृत्ति की समस्या को भी उठाया गया है जो आज भी समाज में विद्यमान हैं वेश्याओं की अपनी विशेषता है।

‘कंकाल’ में ऐसी ही वृद्धा वेश्या का उल्लेख है। तारा उसे अम्मा कहकर पुकारती है। अम्मा की विलास जीर्ण दुष्ट मुखाकृति देखते ही घृणा होती थी।

नारी मुक्ति का प्रश्न सदैव प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य में उजागर हुआ है। मुक्ति, बन्धन, मर्यादा इन तीनों का शरीर, परिवार, समाज, आर्थिकता एवं राजनीति से सम्बन्ध है।

राजेन्द्र यादव ने भी नारी मुक्ति की समस्या को अपनी विभिन्न कथा-कृतियों में उठाया है तथा नारी की परवशता को अनेक संदर्भों में रख देखा-परखा भी। कोई भी जागरुक साहित्यकार इन समस्याओं को अनदेखा कर ही नहीं सकता। विदेशी आए, स्थितियां बदलीं और व्यक्तिगत अधिकार भावना ने स्त्री के पारिवारिक महत्व को अपनी छाया से दृढ़ किया। हर युग की सुविधा और असुविधा ने स्त्री-पुरुष के बन्धन, सम्बन्ध को विशेषतः प्रभावित किया। महादेवी वर्मा, “जब तक दाम्पत्य सम्बन्ध में पशुत्व-देवत्व में घुलकर नहीं आता और देवत्व साकार बन कर नहीं अवतीर्ण होता, तब तक वह अपूर्ण रहेगा।”¹

दाम्पत्य और पारिवारिक सम्बन्धों की अपूर्णतः वर्तमान काल में सभी चिन्तकों, समाज-सुधारकों, कलाकारों और साहित्यकारों की चिन्ता का विषय रही है। सभी ने स्वीकार किया है कि नारी को पुरुष की एकाधिकार भावना से मुक्ति मिले बिना यह पूर्णता प्राप्त नहीं की जा सकती। इसके लिए नारी को स्वतन्त्र रूप से समाज की एक इकाई रूप में अपना अधिकार प्राप्त करना होगा।

‘प्रसाद’ के साहित्य में व्यक्ति या समाज की वास्तविक दुःखपूर्ण स्थिति के चित्रण को यथार्थवादी साहित्य की प्रथम उपलब्धि माना है। इसकी परिभाषा प्रसाद ने इस प्रकार दी है, “उसके स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है.... उस व्यापक दुःख संकलित मानवता को स्पर्श करने वाला साहित्य यथार्थवादी बन जाता है। इस यथार्थवादिता में अभाव, पतन और वेदना के अंश प्रचुरता से आते

1. महादेवी वर्मा, समाज और व्यक्ति (मेरे प्रिय निबन्ध), पृष्ठ 117

हैं। वेदना से प्रेरित होकर जनसाधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुंचने का प्रयत्न यथार्थवादी साहित्य करता है।”¹

‘कंकाल’ प्रसाद का यथार्थवादी उपन्यास है जो साहित्य में नारी की नवीन साहित्यिक उपलब्धि कही जा सकती है। इसमें आधुनिक समाज का चित्र खींचा है।

डॉ० राजमणि शर्मा के अनुसार “लेखक ने इस उपन्यास में प्रचलित समाज और उसके परम्परावादी विश्वासों, कार्य प्रणालियों और उसके अनर्थकारी बन्धनों मानसिक और सांस्कारिक रूप के विरुद्ध जबरदस्त व्यंग्य किया है। इन सभी विधि निषेधों तथा मान्यताओं में प्रसाद को अनास्था हो गई थी। उनके अनुसार नारी रूढ़िवादी धारणा के वशीभूत समाज जिस वर्ग को उच्च सम्माननीय और आदर्श मानकर प्रतिष्ठित होने का दम्भ भरता है, वह सच्ची मनुष्यता से कोसों दूर है, तथा अपने पूर्वाग्रहों के कारण जिस समाज को सड़ा गला निकृष्ट समझकर अवहेलना करता है उसमें मनुष्यता अभी शेष है।”²

इसी तरह प्रसाद की नारी विषयक अवधारण कविता, नाटक, कहानी और उपन्यासों में सदैव मुख्य विषय बनकर उभरी है।

सामान्यतः प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी की विवेचना दार्शनिक स्तर पर हुई। प्राचीन समाज का नारी विषयक दृष्टिकोण उदार एवं विशाल था। वैदिक आर्यों की दृष्टि में नारी धर्म एवं अर्थ की दात्री, वैभव, सौरभ्य की जननी गृहलक्ष्मी रूपा और सर्वपूज्या समझी जाती थी।³

प्रसाद के उपन्यासों में समाज के धरातल में भारतीय जन-जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर आधारित रहा। इसलिए वह आज सामाजिक समस्या को समझने वाले के नज़दीक की कथा थी, समस्या थी। अगर हम यूं कहें कि उनके उपन्यास प्रखर चेतना के प्रतीक एवं क्षीण दिशाओं के अग्रदूत हैं तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

यह तो तय है कि समाज की उन्नति स्त्री के सहयोग के बिना नहीं हो सकती। प्रेमचन्दोत्तर युग में इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, अशक, उषा

1. महादेवी वर्मा, समाज और व्यक्ति (मेरे प्रिय निबन्ध, पृष्ठ 117)

2. राजमणि शर्मा, प्रसाद का गद्य साहित्य, पृष्ठ 110

3. हरिचरण शर्मा, आलोचना और सिद्धान्त, पृष्ठ 6-17

प्रियंवदा, राजेन्द्र यादव आदि उपन्यासकारों ने नारी की स्थिति को उसकी विभिन्न समस्याओं को समझा और अपने उपन्यासों का विषय बनाया।¹

निष्कर्षतः हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द के बाद प्रसाद का महत्वपूर्ण स्थान है। 'प्रसाद' की नारी विषयक अवधारणा समाज की उन्नति एवं कल्याण को समक्ष रखकर, आर्थिक स्वतन्त्रता एवं विकास के लिए चित्रित किया। यह स्वीकारा है उपन्यासकार ने कि समाज की उन्नति स्त्री के सहयोग बिना नहीं हो सकती।

उन सभी स्थितियों को दर्शाते हुए एवं आज समाज समझता भी है कि नारी का अस्तित्व समान अधिकार रखता है लेकिन फिर अफसोस का विषय नारी के अस्तित्व की लड़ाई कब खत्म होगी? जब तक पुरुष नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण नहीं बदलता तब तक। साहित्य में नारी के विविध रूपों को देखते हुए लगता है कि नारी का अस्तित्व खतने से बाहर है। लेकिन व्यवहारिक रूप में ऐसा नहीं है। यह लम्बी और न समाप्त होने वाली बहस एवं मुद्दा बन कर रह गया है।

14, जतोग व्यू

प्रोफेसर कालोनी

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय

समर हिल, शिमला-5

हब्बा खातून और महादेवी वर्मा के काव्य में अन्तरिक संवेदना

प्रो० जौहरा अफ़ज़ल

हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा (सन्-1907-1987) ने दार्शनिकता के पद्यात्मक संस्कारों को, रहस्यवाद को अपनी भावनाओं के सुमधुर परिवेश में सर्वग्राह्य और सजीव बना डाला है। दूसरी और कश्मीरी काव्य साहित्य में हब्बा खातून (सन् 1553-1605) ने अपनी वेदना को दर्दिले गीतों की वेशभूषा से सजाया-संवारा है। जहाँ महादेवी वर्मा ने आधुनिक युग में नारी की विरह-जनित कुंठाओं को वाणी प्रदान की है, वहीं हब्बा खातून ने लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व इसी विषय को अनुभूति की सान पर चढ़ा कर अधिक आभामय और प्रखर बनाया है।

कश्मीरी गीतिकाव्य में ललघद् हब्बा खातून और अर्निमाल ने अपनी आस्थाओं, विश्वासों और दृष्टिकोणों के अनुसार अपनी अनुभूतियों को छन्दोबद्ध किया। ललघद्, रहस्य की परिधि से बाहर न निकल सकीं। हब्बा खातून और अर्निमाल ने अपने व्यक्तिगत अभावों के गीतों को रूप दिया। इन दानों कवयित्रियों ने जीवन से समझोता इसलिए नहीं किया क्योंकि यह कंटकमय था। किन्तु महादेवी वर्मा एक अन्नय साधिका की भाँति अपने प्रण पर डटी रहीं। यद्यपि हब्बा खातून और महादेवी वर्मा के जीवन दृष्टिकोण में विभिन्ता है फिर भी उनके गीतों में नारी-मन की हूक एक जैसी है। हब्बा खातून के गीतों में कारुणा और माधुर्य भाव इस प्रकार घुलमिल गए हैं कि आज की नारी भी अपने ही मन की धड़कनें उनमें अनुभव करती है। इनका आलम्बन लौकिक है और महादेवी का अलौकिक। फिर भी उनके प्रणय निवेदन में एक सी करुणा, मिठास और तीव्रता समाई हुई है। हब्बा खातून की आकुलता निश्छलरूप से बिना कोई मोड़ लिए अपने स्वाभाविक रूप में प्रवाहित है तो महादेवी की

अधीरता उसे जल-जल कर मर जाने का आभास कराती है, फिर भी उसे अपने गहन अध्ययन का सम्बल प्राप्त है, जो उसे भावुक बनाने से बचाता है।

महादेवी वर्मा अपने दाम्पत्य जीवन से निराश होते हुए भी वास्तविक जीवन से पलायन नहीं करती बल्कि अपने जीवन की सारी मिठास चारों दिशाओं में बिखेरती रहीं हैं। इनका व्यक्तित्व तीन रूपों में उभर कर हमारे सामने आता है - कवयित्री के रूप में, गद्यकार के रूप में और चित्रकार के रूप में। इन तीनों ही रूपों में उनका गहन अध्ययन और निष्णात पाण्डित्य अभिव्यक्त होता है। यहाँ उनके केवल प्रथम रूप की चर्चा करेंगे।

महादेवी वर्मा एक छायावादी लेखिका हैं। जो अपनी अनुभूतियों को कविताओं के माध्यम से सम्पन्नित करने के लिए व्यग्र दिखाई देती हैं। उनकी कविता में व्यक्त वेदना वास्तव में व्यक्तिगत, समाजगत, राजनीतिगत और धर्मगत करुणा का संगम है तथा इसे प्रवाह की तीव्रता बौद्ध-दर्शन और गाँधीवाद से प्राप्त हुई है। उन्होंने अपने ही व्यक्तित्व में इन सब कुण्ठाओं को डुबोकर एक ऐसे काव्यामृत का सृजन किया जो जीवन को प्रति करुण होकर भी उत्साहहीन नहीं, अवसादग्रस्त होकर भी कर्म के प्रति अनासक्त नहीं। घुटन की आत्मा फूँक कर भी इस पर विजय पाने का रामबाण है। जीवन के हर कड़वे अनुभव को वह परोक्ष की मधुरिमा में भिगोकर एक ऐसा जीवन-दर्शन प्रस्तुत करती हैं कि उसमें जीवन के प्रति आस्था है। उन्होंने अपनी आत्मा को प्रकृति के रंग में इस प्रकार डुबो दिया है। कि दोनों का अस्तित्व एक ही प्रेमिका के रूप में निखर आता है। वह प्रकृति को अपनी जीवन संगिनी मानकर अपने प्रिय के द्वार पर नैवेद्य चढ़ाती है। प्रिय की धड़कनों में अपनी धड़कनें मिलाकर, संसार की लाज त्याग कर वह घोषणा करती हैं-

मुझे बांधने आते हो,
लधु सीमा में चुपचाप,
कर पाओगे भिन्न कभी क्या,
ज्वाला से उत्ताप ?

प्रिय से मिलन में उनका सारा व्यक्तित्व इस प्रकार झंकृत हो उठता है:-

है युगों की साधना से,
 प्राण का क्रंदन सुनाया।
 आज लघु जीवन किसी।
 निःसीम प्रियतम में समाया।।¹

उन्होंने प्रकृति को मानवीय उपकरणों से सजाकर उसका मानवीकरण कर मानव की भाँति ही प्रकृति भी दुःख-सुःख का अनुभव करती है। इनके हाथों में प्रकृति भावुक और संवेदनशील बन गई है। प्रकृति ने उनके दुःख को बाँट लिया है, उनके आँसू पोंछे हैं। इस प्रकार प्रकृति के साथ मिल कर वह रो उठती हैं-

मत व्यथित हो फूल
 किसको सुख दिया संसार ने
 स्वार्थमय सब को बनाया
 है यहाँ करतार ने।²

महादेवी वर्मा भौतिक धरातल से ऊपर उठकर आध्यात्म की ओर उड़ान भरना चाहती हैं। इस उड़ान में उनके कल्पना रूपी पंखों में आत्मा और परमात्मा के तादात्म्य की तीव्रता स्पष्ट परिलक्षित है। आत्मा और परमात्मा का यह तादात्म्य जितना करुण है, उतना ही मधुर भी, यहाँ मृत्यु बाधक नहीं है। ससीमता की इस प्यास को असीमता की ज्ञान-गंगा ही बुझा सकती है। उनका विश्वास है कि ज्ञान के पथ से जिस असीम को खोजने का बीड़ा उन्होंने उठाया है वह स्वयं में एक सफल प्रयास है। साधना की प्यास जब बुझ जाएगी तो सिद्धि का कोई आकर्षण नहीं रहेगा।

महादेवी वर्मा का प्रियतम निराकार और अलख है। यशोधरा और उर्मिला का प्रियतम साकार और सापेक्ष है। इसी कारण एक निर्धारित अवधि के पश्चात् उन्हें उनके प्रियतम के दर्शन हो जाते हैं। किन्तु आध्यात्मिक प्रेम की कोई अवधि नहीं होती। इसमें प्रेमिका निरन्तर पीड़ा के ज्वर में उबलती रहती है। उनका काव्य इसी पीड़ा का संवाहक बन गया है। उन्हें प्रेमी द्वारा दी गई पीड़ा में आनंद की अनुभूति होती है। उन्हें इस

1. महादेवी वर्मा, 'यामा'

2. महादेवी वर्मा, 'नीरजा'

पीड़ा की जलन में एक शीतलता का अनुभव होता है :-

प्रिय इन नैनों का अश्रुनीर,
दुख से आखिल सुख से पंकिल,
बुद बुद से स्वप्नों से केनिल,
बहता है युग-युग से अधीर।¹

महादेवी वर्मा का काव्य मुक्तक रूप में है, गीतों का संग्रह है। उनकी अज्ञात के प्रति रागात्मक भावुकता किसी प्रबन्ध का रूप धारण न कर सकी क्योंकि उनके मस्तिष्क में भाव, जुगनू के समान चमकते-बुझते गए तथा अनुभूति की तीव्रता होने के कारण गीतों को छन्दोबद्ध करने का अवकाश उनके पास न था। प्रतीकों का सुन्दर चित्रण उनके काव्य में देखने को मिलता है। उनके गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनको पढ़ते ही पाठक आत्मविभोर हो उठता है। प्रतीकों के प्रयोगों ने उनके काव्य को दुरूह नहीं बनाया है बल्कि प्रतीक बुद्धिगम्य हैं और अर्थ में किसी प्रकार का व्यावधान उत्पन्न नहीं करते हैं। उनके काव्य में शृंगार रस की प्रधानता है परन्तु विप्रलम्भ शृंगार ही उनकी काव्य साधना का आधार है। रस राज के निरूपण में महादेवी वर्मा ने हर एक अवस्था को पूर्ण रूप से चित्रित किया है और इसकी अपेक्षित भाव सामग्री जुटा कर इसका सूक्ष्मतम चित्रांकन किया है।

हब्बा खातून के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु 'बीरबल काचरू' ने अपने फारसी इतिहास में हब्बा के सम्बन्ध में लिख है। जिससे पता चलता है कि हब्बा खातून 'पाम्पुर' के गाँव चन्दहार की रहने वाली थी। उनका असली नाम 'जून' था। उनका विवाह अपने ही वंश के व्यक्ति अजीज़ लोन से कर दिया गया था। कुछ समय पश्चात् वह कश्मीरी गीत गाने लगीं। यह बात उनके ससुराल वालों को अच्छी न लगी और उसे घर से निकाल दिया। एक दिन यूसुफ शाह उसके अनुपम सौंदर्य को देखकर तथा उसके मधुर स्वर सुन कर, उस पर मोहित हो गए और तत्पश्चात् उससे विवाह कर लिया।

ससुराल में हुए अत्याचारों का वर्णन करते हुए वह कहती है।-

1. महादेवी वर्मा- 'नीरजा'

हशि लायनम यथ दूपिस्य थफ
 सुइ मेअ गोमो मोतअ खोअत सख
 यन्द्रकतान न्यन्दिर पेइमो
 चखर फुटमो मालिन्वहों ¹

(अथत् चर्खा कातते-कातते मेरी आँख चरखे के चक्र पर लग गयीं, जिससे वह टूट गया। मेरी सास ने मुझे बालों से पकड़ कर घसीटा, जो मुझे मृत्यु से भी अधिक कष्टदायी लगा। मेरी सुसराल वालों से नहीं बनती। मेरी मायके वालों मेरा चारा करो।

वहीं वह अपने पति से अपार प्रेम करती है। पति से मिलने की छटपछाहट निम्न पंक्तियों देखी जा सकती हैं :-

यारा दादे तारि गयसो
 भरबुक छुम आमतुइ
 अब्बा खोतूनि वोन इशारा
 दिल छुशारा मालिन्य हो ²

(अर्थात्, मैं अपने प्रियतम के लिए बेकल हो रही हूँ। मेरा जीवन मुझ पर भारी हो रहा है। ऐ मेरे सावधान मैके वालों। मेरे इशारे को समझो।)

हब्बा खातुन का प्रधान विषय श्रृंगार है। श्रृंगार के संयोग पक्ष का साक्षात्कार न होने के कारण उसकी कल्पना के वियोग की भरपूर पैंगे बढाई हैं :-

दाइ नय दिय तय इकि नय पूरे
 वय मोठ नो छन कांसि पोशान
 मोय चव हब्बा खोतूनिय दूरि दूरे
 केंसि मा रेविन शूरे पान।। ³

(अथत्, यदि परमात्मा न दे और भाग्य भी साथ न दे तो इस मुट्ठी भर चावल से किसका निर्वाह होता होगा। हब्बा खातुन ने मदिरा के-प्रेम के प्यालों पर प्याले पी डाले। किसी का बचपन यँ न खोए।)

-
1. हब्बा खातुन - अमीन कामिल, पृष्ठ 39
 2. वहीं पृष्ठ 62
 3. वहीं पृष्ठ 40

हब्बा खातून के श्रृंगार-प्रतिपादन में करुणा का पुट हृदय विदारक तीव्रता लिए हुए हैं:-

रचि रचि रय्तकोल छुम सोरान्य

वृरि मा गछान अछि - पोश

कुनि हिति बुलबुल इत अकि आनय

छाव म्योन दानिय पोछ ॥ 1

(अर्थात् धीरे-धीरे मेरी यौवन की ज्वाला कम होती जा रही है। डर है कि कहीं चम्पा कली मुर्झा न जाए। ऐ मेरे बुलबुल किसी बहाने एक बार आ जाओ और मेरे अनार जैसे लाल फूलों वाले यौवन को लूट लो।)

कश्मीर में लौकिक प्रेम प्रधान गीतों का श्रीगणेश हब्बा खातून से ही माना जाता है। श्रृंगार के प्रतिपादक फलस्वरूप उनके गीतों में रागात्मक तत्त्व अधिक मुखरित हैं। यह रागात्मकता उधार की नहीं, उनके जीवन का एक ज्वलन्त पृष्ठ है। उनकी अन्तर्मुखी भावना प्रकृति से आँखें बचाकर केवल अपने अन्तस्तल में गोते लगाती रही। जिस प्रकार उनके सम्पूर्ण काव्य में समाज के प्रति भी परिलक्षित है। जहाँ कहीं उन्होंने प्रकृति-चित्रण किया भी है, वह केवल प्रभवोत्पादकता के लिए है। उनके मन में इतना आवेगमय ज्वर था कि उन्हें प्रकृति निहारने का अवसर ही न था।

उनके कलापक्ष के सम्बन्ध में यह कहना संगत होगा कि उन्होंने पुरानी लीक पर न चलकर विद्रोह किया, 'लल्ला' और 'नूरुद्दीन नूरानी' से चली आ रही 'वाक' परम्परा को उपेक्षित कर फारसी शैली में गज़ल के अनुकरण पर अपने गीतों की संरचना की। कश्मीरी साहित्य में इन्हें गीतों की जननी माना जाता है। किसी भी प्रकार के मोह में न पड़ते हुए उन्होंने अपने आवेगों को मुक्तक रूप में व्यक्त किया।

भाषा की दृष्टि से इन पर कश्मीरी के अतिरिक्त फारसी भाषा का प्रचुर प्रभाव है। ठेट कश्मीरी शब्दों का प्रयोग भी हब्बा ने बड़ी सावधानी से किया है। भाषा में तरलता एवं प्रवाह है। उन्होंने समास शैली को अपना कर थोड़े अरणिमाल्, महजूर आदि रोमानी कवियों ने इसी माध्यम को अपना कर गर्व का अनुभव किया है।

हब्बा खातून और महादेवी वर्मा के भाव पक्ष में भिन्न-भिन्न

आलम्बनों के होते हुए भी किसी न किसी रूप में साम्य दिखाई देता है। 'हब्बा' का प्रेम यद्यपि 'युसुफ' के संकीर्ण व्यक्तित्व तक ही सीमित है। अतः उन्हें अपनी वेदना को कल्पना रूपी पंख देने के लिए महादेवी के समान विस्तृत क्षेत्र उपलब्ध नहीं फिर भी वह इन अभावों में अपनी अनुभूतियों की गरिमा से महादेवी के समकक्ष बैठने का अधिकार पाती हैं।

इतना साम्य होते हुए भी इन दोनों कवयियियों के काव्य में कुछ वैषम्य भी है। हब्बा खातून एक ऐसे वातावरण को उपज हैं जो सुसंस्कृत नहीं है। उनका समाज अभी शैशवास्था में ही था। इसी कारण उनके काव्य में बचपने की चुलबुलाहट और तिलमिलाहट स्पष्ट दिखाई देती है। मन की मौज में वह जग की लाज को ही भुला बैठी हैं, जबकि महादेवी वर्मा आज के बौद्धिक सजगता के युग में ऐसा करने का साहस नहीं कर सकती थीं। अतः हृदय को सांत्वना देने के लिए उन्होंने चिंतन का सहारा लिया।

हब्बा खातून और महादेवी वर्मा, दोनों ने मुक्तकों के प्रति अपना मोह व्यक्त किया है। काव्य की और कोई विधा उन्हें आकर्षित न कर सकी। दोनों के ही गीतों में संगीतात्मकता है। इन दोनों के गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि थोड़े शब्दों में उन्होंने गागर में सागर भरने का सफल प्रयास किया है। हब्बा खातून के कलकंठ से निकली संगीत- लहरी आज भी हमें सम्मोहित करती है। वैसे ही महादेवी के करुण संश्लिष्ट गीत संगीतमय होकर एक अपूर्ण काव्य-संसार रचते हैं।

हब्बा खातून और महादेवी वर्मा की तुलना वास्तव में सोलहवीं शताब्दी की अनगढ़ गामीण वाला और बीसवीं शताब्दी की सुसंस्कृत महिला की तुलना है। दोनों ही अपने काव्य-कानन की कोकिला हैं।

अध्यक्ष

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

कश्मीर विश्वविद्यालय

श्रीनगर

बदलते परिवेश में 'हिन्दी' भाषा

-दिलशाद जीलानी

15 अगस्त 1947 को आजादी मिलने के बाद 'हिन्दी' भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया। हिन्दी शताब्दियों से भारत की जनभाषा रही है। कबीर, सूर, तुलसी, प्रसाद, महादेवी, बच्चन की इस भाषा ने भारत की आत्मा को जगाया था। इसी भाषा से आजादी की लड़ाई भी लड़ी गयी थी। हिन्दी में ही हमारी आत्मा बोलती है, हिन्दी में देश की मिट्टी की ममतामयी खुशबू आती है। हिन्दी में ही हम हंसते-गाते-रोते हैं। अतः हिन्दी भाषा ऐसी भाषा है जो भारतीयता को जगाती है और हमारी नागरिकता को अलग से अस्मिता प्रदान करती है। हिन्दी हमारे जीवन दर्शन और मानसिकता की अभिव्यक्ति है। "हिन्दी एक जीवन्त-भाषा है। इसमें बड़ी सुरम्यता और उदारता है। हिन्दी के यही तो वे गुण हैं जो इसे दूसरी भाषाओं के शब्दों और रूपों को आत्मसात् करने की असीम क्षमता प्रदान करते हैं। हिन्दी हमें दक्षिण एशिया के देशों से ही नहीं बल्कि पूरे एशिया और मारीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनीडाड व टोबेगो जैसे अन्य देशों के साथ भी जोड़ती है।"¹ इस प्रकार हिन्दी भाषा का अध्ययन-अध्यापन आज व्यवस्थित रूप में विश्व के कई देशों में हो रहा है और अनेक विदेशी लोग हिन्दी भाषा के अध्ययन में रूचि भी ले रहे हैं और अच्छी हिन्दी बोल भी सकते हैं।

'हिन्दी' से वह हिन्दी अभिप्रेत है जिसकी लिपि देवनागरी हैं। इसकी विशेषता यह है कि जैसे बोली जाती है वैसी ही लिखी भी जाती है। देवनागरी वर्णमाला में उन सभी स्वरों को इंगित करने का सामर्थ्य है जो मानव मुख से उच्चरित होते हैं। इसका व्याकरण कम अपवादवाला और ग्रहणशील है। लेखन और उच्चारण में साम्य होने के कारण यह विश्व की सर्वाधिक सरल भाषाओं में से एक है। दुनिया भर में हिन्दी को जिस रूप

1. श्री के. आर. नारायणन, (पूर्व राष्ट्रपति) - राजभाषा भारती- स्वर्ण जयंती विशेषांक, जनवरी 2004 (पृष्ठ-आमुख)

में समझा जाता है वह उसका संस्कृत निष्ठ रूप है। संस्कृत की समृद्ध-सम्पदा की विरासत के बावजूद अपने विगत एक शती में ही अन्य भाषाओं के असंख्य शब्द अपनाए हुए हैं। इस प्रकार “हिन्दी” वह कड़ी बन जाना चाहती है जो भारतीय भाषाओं को परस्पर जोड़े, भारतीय जनता को अपनी संस्कृति और गरिमा से जोड़े, हिन्दी वह साधन बन जाना चाहती है जो राष्ट्र को ‘एक हृदय’ बना सके। हिन्दी वह प्रतीक बन जाना चाहती है जो भारत की गौरवशाली परम्परा, इसके स्वभिमान और आत्मनिर्भरता की याद सारी दुनिया को दिलाती रहे।¹ “हिन्दी एक सामर्थ्यवान भाषा है, उसकी जड़ें जमबूत और गहरी हैं। वह विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र की बहुसंख्यक जनता की भाषा है, एक धर्म-निरपेक्ष, गुट-निरपेक्ष, आत्म-निर्णय वाले देश की राजभाषा और राष्ट्रभाषा है, वह दुनिया भर में किसी न किसी माध्यम से ज़िन्दा है। ऐसी भाषा का व्यवहार करने वालों के मन में आत्महीनता क्यों होनी चाहिए।²

लेकिन आज ‘हिन्दी’ के विरोध में एक मनोवैज्ञानिक वातावरण बनाया गया है, उसका लगातार मजाक उड़ाया जा रहा है। फिल्मों में संस्कृत-निष्ठ हिन्दी के उच्चारण विकृत करके, व्यंगम शैली से उस पर आक्रमण किया गया। हिन्दी अध्यापकों और हिन्दी सेवियों को दकियानूस और गंवार बताया गया। दफ्तरों, शिक्षा संस्थानों, प्रतियोगी परीक्षाओं, सेवाओं आदि में हिन्दी-भाषा से लगातार ओछा उपेक्षित व्यवहार करके उसके आत्माभिमान को तोड़ा गया, हीन-भाव पैदा किया गया।

आज दफ्तरों में, रेलवे में, बैंकों, व्यापार-व्यवसाम में अंग्रेजी भाषी विशिष्ट और सभ्य माना जाता है और उसका काम शीघ्र होता है। इसीलिए हिन्दी तथा अन्य भाषा-भाषी भी अपनी भाषा में अंग्रेजी की खिचड़ी पकाकर सभ्य और पढ़े-लिखे होने का बोध पैदा करना चाहते हैं। इस प्रकार आज नई पीढ़ी हिन्दी के प्रति उदासीन होती जा रही है, बल्कि हिन्दी में बोलने-लिखने में अपमान महसूस कर रही है। उसके सिर पर अंग्रेजी का भूत सवार है। अब बाढ़ की तरह बढ़ रही है युवक-युवतियाँ

1. प्रभाकर श्रोत्रिय - हिन्दी: दशा और दिशा, पृ. 45

2. वही - पृष्ठ 62

अंग्रेजी में बात करना अपना गौरव समझते हैं। हिन्दी में बात-चीत करना मूर्खता और अज्ञानता का घोटक बन गया है या पिछड़ेपन का लक्षण समझा जाने लगा है। आज हिन्दी में बात करने वाले लोग अपने ही घरों में हास्यास्पद बनते हैं। यह बात अलग है कि नई पीढ़ी को अंग्रेजी का कितना सही ज्ञान है। वह किस प्रकार की अंग्रेजी बोलती है। उसका व्याकरण सही है या नहीं। यदि उचित दृष्टि से देखा जाए तो हमारा युवावर्ग न तो हिन्दी ठीक से बोलता है और न अंग्रेजी। उसकी भाषा खिचड़ी है। वह हिन्दी-अंग्रेजी या अन्य देशी-विदेशी सभी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करता है। उसने अपना एक भाषा-स्वरूप बना लिया है। जिसे आजकल 'हिंग्लिश' के नाम से पुकारा जा रहा है। 'हिंग्लिश' वह है जो हिन्दी तो है पर अंग्रेजी शब्दों से भरपूर। उसने अपने वाक्य बना लिए हैं। नई पीढ़ी उसे जमकर पनपा रही है। ये युवाजन अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़कर निकले उच्च-मध्य और मध्य-मध्य वर्ग के छात्र हैं, जो इस भाषा के विकास को गति दे रहे हैं। उन्हें अंग्रेजी शब्दों में जो प्रभाव और शक्ति प्रतीत होती है, वह उन्हें हिन्दी शब्दों में नहीं दिखाई देती। अतः उनके प्रत्येक वाक्य में अंग्रेजी शब्दों की भरमार दिखाई देती है। जो रही-सही कसर है उसे पूरा करने में टी० वी० जोर-शोर से लगा है वह इसको आग दे रहा है। टी० वी० के किसी भी चैनल को आप देखें उसका आरम्भ मिलावट के बिना असम्भव है। इस तरह हम देखते हैं। कि अंग्रेजी ने तेजी से हमारे भीतर घुसपैट कर अपने को जमा लिया है। उसने माँ को मम्मी या मॉम बना दिया है। पिता को डेडी या डेड कर दिया है। शिक्षक अब टीचर हैं वह दिन दूर नहीं जब अंग्रेजी हम सबको फटीचर बना कर छोड़ देगी। आज उच्च-मध्य वर्ग, मध्य-मध्य वर्ग के लोग ही नहीं बल्कि निम्न-वर्ग के लोग भी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ाना चाहते हैं। यहाँ तक कि एक रिक्शेवाला भी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में अपनी गाड़ी कमाई का धन लगाकर पढ़ा रहा है। आज जो जरा पैसे वाला हुआ नहीं कि हो गई हिन्दी से घृणा और अंग्रेजी से लगाव की कहानी शुरू। इस बदलते हुए परिवेश में बहुत ही कम आमदनी वाला आदमी भी अंग्रेजी में ही अपनी सुरक्षा देखता है। हिन्दी अब जान की बावली हो गई है न उसे छोड़ने से न ही अपनाने से काम चलता है। इस

प्रकार यह काफी समय से सिद्ध भी हो चुका है कि हिन्दी को हिन्दी वाले ही अपमानित और नष्ट करने पर तुले हुए हैं। ऊपरवर्णित घटित होते हुए भी आज इस कम्प्यूटर के दौर में हिन्दी का प्रयोग अत्यधिक होता जा रहा है। इस परिवेश में हिन्दी भाषा की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण रहेगी, यह तो समय ही निर्धारित करेगा। आज जब हमने नयी शती में प्रवेश किया है तो इस क्षेत्र में बड़े परिवर्तनों के संकेत मिलने लगे हैं। मीडिया के क्षेत्र में लगातार बढ़ता हिन्दी का प्रयोग होने वाले परिवर्तनों का सूचक है?; क्योंकि आज सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। इस युग में निश्चित रूप से यह हमारे सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार, सोच और संस्कारों के साथ-साथ साहित्य को भी प्रभावित करता जा रहा है। अतः आज हिन्दी सॉफ्टवेयर एवं उपयुक्त पदतियों के निर्माण को प्राथमिकता दी जा रही है। जिसके फलस्वरूप हम आज सूचना एवं प्रौद्योगिकी के इस युग में घर बैठे इन्टरनेट पर वेबसाइट 'दुनियाँ डाट कॉम' जो कि विश्व का पहला हिन्दी पोर्टल साईट है के माध्यम से बहुत सी जानकारियाँ हिन्दी में प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा इसलिए सम्भव हुआ है क्योंकि हिन्दी अभिव्यक्ति-क्षमता में अचूक है, साथ ही मर्मस्पर्शी भाषा है। शिक्षा का सम्पूर्ण माध्यम बनने की इसमें क्षमता है, प्रत्येक क्षेत्र में उपयोग हेतु हिन्दी का पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है। इस प्रकार हिन्दी भाषा की विकास-यात्रा के बढ़ते चरणों को देखकर ऐसा लगता है कि यह 21 वी० शती के मध्य तक वटवृक्ष का रूप धारण कर लेगी।

रीडर

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

कश्मीर विश्वविद्यालय

श्रीनगर

कश्मीर में हिन्दी काव्य

डॉ० रूबी जुत्शी

कश्मीर प्रान्त में काव्य-परम्परा अति प्राचीन है। यहां कई भाषाओं में काव्य लिखा गया है तथा संस्कृत, फारसी, कश्मीर, अंग्रेज़ी, उर्दू एवं हिन्दी में कश्मीर के कई कवियों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर कश्मीर के काव्य क्षेत्र में वृद्धि की है। इस लेख में केवल हिन्दी काव्य को लिया गया क्योंकि सम्पूर्ण भाषाओं के काव्य को एक लेख में समेटना उन कवियों के साथ अन्याय होगा जिन्होंने विभिन्न भाषाओं के काव्य में रव्याति प्राप्त की है।

भक्तिकाल (सन् 1350 से सन् 1700) को हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। इस युग (भक्ति आन्दोलन) से भारत का एक-एक प्रदेश प्रभावित हुए बिना न रह सका। कश्मीर प्रदेश की कश्मीरी रहस्यवादी कवयित्री रूपाभवानी (सन् 1625 से सन् 1719) भी इस युग से प्रभावित होकर 17वीं-18वीं शताब्दी में भक्तिपूर्ण कविताएं कश्मीरी के साथ-साथ हिन्दी में भी लिखने लगी, उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियां :-

अपने घर आया आप साईं।

जो कुछ में था अब नाही।।

इन कविताओं में खड़ी बोली का विशुद्ध रूप पाया जाता है। रूपाभवानी के अतिरिक्त बहुत सारे कश्मीरी कवियों ने हिन्दी में भी कविताएँ की है जिनका ब्यौरा इस प्रकार है:- बुलबुल, श्रीकृष्ण राजदान, परमानन्द (ने 'शिवलग्न' में कई स्थानों पर हिन्दी में ही गीत गाये हैं) ठाकुर जू मनवटी, हलधर जू ककरू, पंडित नीलकंठ शर्मा, मास्टर ज़िन्दा कौल (पत्रपुष्प) दीनानाथ नादिम ('कलिंग से राजघट तक' और 'अजनता') नारायण जी खार ('नारायण प्रकाश' काव्य संग्रह) और दुर्गा प्रसाद काचरू आदि ने हिन्दी की कई कविताएँ लिखकर कश्मीर में हिन्दी-काव्य की आरम्भिक पृष्ठभूमि तैयार की है।

स्वतन्त्रा के पश्चात् काव्य के नये सोपान सामने आएँ। परिस्थितियों बदल गई, प्रवृत्तियां बदल गई समाज बदल गया और काव्य के विषय

बदल गए। समाज की मांग देकर कवियों ने लेखनी चलाई। कुछ कवियों का योगदान इस प्रकार है:-

जानकीनाथ कौल 'कमल'

‘विक्षिप्त वीणा’ काव्यसंग्रह सन् 1980 में प्रकाशित हुआ है इस संग्रह में संतालीस कविताएँ संकलित हैं। ‘मैं’ कविता इस काव्यसंग्रह की बहुचर्चित कविता रही है जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:-

मैं उस वीणा की झंकार हूँ
जिसके तार सहसा टूट पड़े हो

शशि शेखर 'तोषखानी'

तोषखानी जो एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने छायावाद से हट कर प्रगतिशील स्वर को कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। ‘थोड़ा सा आकाश’ और ‘एक अपरिचित आकाश’ इनके प्रसिद्ध कविता संग्रह हैं। ‘शुत्र से बातचीत’ कुहरा डूबे माथों पर’ अब एक नया सूर्योदय लहराएगा’ एक दिन और’ चीड़ों में ठहरी बयार’ इनकी बहुचर्चित कविताएँ रही हैं जिनके कारण घाटी के कवियों में इनका नाम अग्रणी रहा है।

डॉ० रतन लाल 'शान्त'

इनका पूरा नाम डॉ० रतनलाल रैणा है किन्तु ‘शान्त’ उपनाम से पूरे जम्मू कश्मीर में जाने जाते हैं। इनको अभी तक जिन पुरस्कारों से पुरस्कृत किया गया है वह है (1) राष्ट्रपति का स्वर्णपदक (2) ज०क० राज्य कल्चरल आदि। ‘खोटी किरणें’ ‘कविता अभी भी’ इनके प्रमुख कविता संग्रह हैं। ‘कविता अभी भी’ बहुत बड़ा कविता संग्रह है। इसमें 57 कविताएँ संकलित हैं। इसके अतिरिक्त इस संग्रह में कुछ ‘गज़ल’ भी प्रकाशित हुए जो चर्चित रहे हैं। ‘प्रतीक्षा’ ‘नारा’ ‘खोज’ आदि कविताएँ प्रमुख रही हैं।

मोहन निराश

निराशजी घाटी के प्रतिष्ठित हिन्दी कवियों में से एक हैं। ‘कृष्ण मेरा पर्याय’ ‘शून्यकाल’ और ‘खानाबदोश’ आदि कविता संग्रहों को लिखकर इन्होंने हिन्दी में रव्याति प्राप्त की है। विस्थापन से पहले मोहन निराश जी रेडियों कश्मीर श्रीनगर से ‘विविधा’ कार्यक्रम करते थे जो उनका एक

उल्लेखनीय कार्य माना जाता है। इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम से प्रान्त के कवि। कवयित्रा एवं लेखक/ लेखिकाएँ अपने श्रोताओं तक पहुँचते थे।

पृथ्वीनाथ 'मधुप'

'मधुप' इनका उपनाम है। इन्होंने जितने भी काव्यसंग्रह लिखे हैं वह इस प्रकार है:- 'वे मुखर क्षण' 'खुली आंख की दरस्तां' 'बबूल के साए में मोंगरा' अदि सुप्रसिद्ध काव्य संग्रह हैं।

क्षमा कौल

एक सशक्त कवयित्री है जिन्होंने अक्सर भोगे हुए यथार्थ की बात की है। 'तुम' 'युद्ध' ईश्वर' धूप की गली' जूताखोर' 'बब्बन के नाम' 'दिन' और 'माँ' आदि इनकी चर्चित कविताएँ रही हैं। नारी मन की वेदना, पुरुष जाति का अहम्, सामाजिक बन्धनों के विरोध में उनका स्वर उभरता है उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ :-

खुलकर सांस लेना और छोड़ना खतरा होता है।

पिता के भय और ज्ञान के खिलाफ उसे है

एक सहज ज्ञान, नैतिक अनैतिक का

अतः इन्होंने अपनी कविताओं से मानव मन को छुआ है सबसे महत्वपूर्ण बात तो इनमें यही है।

अग्निशेखर

शेखर भी वादी के एक जाने माने कवि माने जाते हैं, इनके 'किसी भी समय' कविता संग्रह में 61 कविताएं संकलित हैं। 'कागड़ी' 'बर्फ' 'कोयला' 'बर्फ में धूप' 'हांगुल' और चिनार के पत्ते आदि शीर्षक को कविताएँ समान्य विषयों पर आधारित है यही कारण है पाठक का ध्यान इन कविताओं की ओर ज़्यादा गया है खासतौर पर वादी के लेखक इनकी कविताओं को सराहते हैं।

महाराज कृष्ण 'संतोषी'

इनका पहला संग्रह सन् 1980 और दूसरा संग्रह सन् 1992 में प्रकाशित हुआ है। 'इस बार शायद' कविता संग्रह में बतीस कविताएँ प्रकाश में आई है। इनके दूसरे संग्रह 'बर्फ पर नंगे पाँव' में अठवान

कविताएँ संकलित है जो अति चर्चित रही है।

डॉ० सोमनाथ कौल

प्रो. सोमनाथ कौल

इस विज्ञान के प्रकाश विद्वान, प्रो. सोमनाथ कौल का जन्म विद्यालय के दिवस विभाग में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।
उत्साह, चित्तता, इत्यादि, विभागी, चित्तता के यत्नायन आता
विद्यार्थी में उत्तरी महत्वपूर्ण गुणों का निर्माण है। कविता क्षेत्र में भी
उत्तरी महत्वपूर्ण गुणों का निर्माण है। कविता क्षेत्र में भी
वैसाखियां, रक्त के फूल, रद्दी की टोकरी आदि इनकी
प्रसिद्ध कविताएँ रही हैं। इनके अतिरिक्त वादी में कुछ समकालीन कवि
कवयित्रियां भी रही हैं।

समकालीनकाव्य

समकालीन कविता मनुष्य जीवन की समस्याओं दैनिक आवश्यकताओं, संघर्षों का संसार ही समकालीन कविता का काव्य-संसार है। समकालीन कविता में समय की पहचान है। इसमें आज के संघर्ष करते व्यक्ति का चित्रण है। समकालीन कवयित्रीयां में सबसे पहले चन्द्रकान्तजी का नाम अग्रणी है।

चन्द्रकान्तजी

चन्द्रकान्तजी का जन्म श्रीनगर के गणपतियार में प्रो० रामचन्द्र पण्डित के घर में सन् 1938 सितम्बर को हुआ है। मूल निवासी सोपौर के है। मातृहीन बालिका का लालन-पालन एक प्रकाश विद्वान, प्रसिद्ध अध्यापक एवं समाज सुधारक के घर में तो हुआ है पर सोतेली माँ के जुल्मसितम से त्रस्त होकर बारह वर्ष की आयु में ही अपनी वेदना एवं कुण्ठा को कविता रूप में व्यक्त कर चुकी हैं :-

भर आता जब यह मौन हृदय
तब मिटते घाव सजग होकर
कुछ पीड़ा सी देते मन को
पलकें भीगीं-भीगीं होकर

लेखिका के लेखनकार्य का प्रारम्भिक रूप है पर सम्पूर्णतौर पर लेखन क्षेत्र में यह सन् 1976 में आई है इनका प्रथम काव्य-संग्रह 'यही कहीं आसपास' द्वितीय संग्रह 'चुपचाप गुजरते हुए' है। दोनों संग्रह एक ही वर्ष सन्

1999 में प्रकाशित हुए हैं दोनों का प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस है।

उपेन्द्र रैणा

उपेन्द्र रैणा काव्य संग्रह 'चीख की एक भाषा'

महाराज कृष्ण 'भरत'

काव्य संग्रह 'फेरन में छिपाये तिरंगा'

सुनीत रैणा

काव्य संग्रह 'चिनार के आँसू'

प्यारे लाल हताश

काव्य संग्रह 'खोए हुए छण' 'पीड़ा अस्तित्व की' आदि।

निदा नवाज़

कश्मीर के सुप्रसिद्ध मुसल्मान कवि निदा नवाज़ साहब सचिव कश्मीर हिन्दी लेखक संघ और अध्यक्ष ज़िला लेखक संघ, पुलवामा, सदस्य मराज़ कल्चरल फ़ोर्म में कार्यरत हैं। इनके 'अक्षर-अक्षर रक्त भरा', कविता संग्रह में बतीस कविताएँ संकलित हैं। जिसमें से 'वितस्ता साक्षी रहना' 'काले बादल का टुकड़ा' निष्फल उपासना' में तो घास हूँ, उग जाऊंगा, आदि कविताएँ इनकी महत्वपूर्ण कविताएँ मानी जाती हैं। इन्होंने अपनी कविताओं में पिछले दस-बारह सालों की साधना व्यक्त तो की है पर सांस्कृतिक जड़ों को जोड़ने और तोड़ने का साहस नहीं रखते हैं। इस वर्ष के हिन्दी दिवस पर कवि को साहित्य सम्मेलन (जम्मू) के द्वारा 'साहित्य प्रभाकर' के पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है। जो स्थानीय साहित्यकारों के लिए गौरव और आगे बढ़ने के लिए एक प्रेरणा है।

निर्मल ऐमा

निर्मल जी आज से दस साल पहले वादी से विस्थापन कर चुकी हैं। इनकी काव्य कृति 'अमिट शब्द' में 46 कविताएँ संकलित हैं- 'दिशाहीनता' 'सुबह का गीत' मानवता' 'आँसू' और 'आकाशा' आदि इनकी सर्वप्रसिद्ध कविताएँ हैं। इनकी रचनाएँ अक्सर 'योजना' पत्रिका दैनिक कश्मीर टाइम्स साप्ताहिक 'चंद-भागा संवाद' इत्यादि में प्रकाशित होती है। इसके अतिरिक्त लेखिका की कई कविताएँ दूरदर्शन केन्द्र जम्मू तथा रेडियों कश्मीर जम्मू से भी प्रसारित होती रहती है।

डॉ० जमीला मीर

जमीलाजी का काव्यसंग्रह 'पी बिन विरह' को फनकार कल्चरल ऑरगनाइजेशन श्रीनगर, कश्मीर ने प्रकाशित किया है। इस काव्यसंग्रह में केवल दो कविताओं के शीर्षक दिए गए हैं। जो इस प्रकार हैं- 'साया बनाम मित्र' और 'नाग' है इसके अतिरिक्त इसमें एक लम्बी कविता संकलित है। उन्होंने अपने काव्य में सच की कड़वाहट और जीवन की कठोरता व्यक्त की है। घाटी की इस कवयित्री ने संग्रह में अपनी विरह वेदना, घुटन और पीड़ा को भी अपने सरल और मधुर शब्दों में अभिव्यक्त किया है।

उपसंहार

अन्त में इसी निर्णय पर पहुँच जाते हैं कि अहिन्दी भाषी प्रदेश होने के उपरान्त भी कश्मीर घाटी में हिन्दी साहित्य के प्रमुख क्षेत्र 'काव्यक्षेत्र' में इतना काम हुआ है जो समेटना दूभर है क्योंकि यह सारा साहित्य बिखरा पड़ा है। जिन लोगों की यह धारणा रही है कि वादी में हिन्दी का भविष्य अन्धकारमय है शायद वह ऐसे योगदानों से अनभिज्ञ है। यह साहित्य तब भारतवर्ष के कोने-कोने तक पहुँच पाता अगर वादी में विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाएं और समाचार पत्र उपलब्ध होते।

वादी के अन्तिम और उच्च शिक्षा संस्था कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष को राज्य सरकार एवं केन्द्रीय सरकार से विभिन्न प्रकार की सहायता से विभागीय पत्रिका 'वितस्ता' के अतिरिक्त और एक साहित्यिक पत्रिका निकालनी चाहिए जिसमें प्रदेश के आम हिन्दी लेखकों को स्थान प्राप्त हो सके। प्रदेश में हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है जिसका जीता-जागता उदाहरण मुस्लिम कवि निदा नवाज़ एवं डॉ० जमीला मीर आदि हैं। हिन्दी से किसी को घुणा नहीं परन्तु प्रदेश में हिन्दी शिक्षकों का अभाव है।

प्रवक्ता

स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग

कश्मीर विश्वविद्यालय

श्रीनगर-190006

‘अनबीता व्यतीत’- प्रवासियों की दारुण पीड़ा

डॉ० मज़हर अहमद खान

कथाकार कमलेश्वर का उपन्यास जगत् में ‘एक सड़क सत्तावन गलियों’ से लेकर ‘अनबीता व्यतीत’ तक का सफ़र मध्यवर्गीय जन-मानस की पीड़ा, संवेदना, संघर्ष, जिजीविषा, खंडित होते जीवन मूल्यों को रेखांकित करते हैं। आलोच्य उपन्यास ‘अनबीता व्यतीत’ भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। ‘कितने पाकिस्तान’ पर सन् 2003 का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त करने के पश्चात् ‘अनबीता व्यतीत’ उनकी नवीन संरचना है।

अरावली पर्वतमाला के क्षेत्र में स्थित सुमेरगढ़ की दुर्गनुमा कोठी और उसके पीछे बनी ‘नीली झील’ उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है। जहाँ लाखों की संख्या में रंग-बिरंगे पंछी देश- देशान्तर से आकर वास करते हैं। लेकिन कुछ स्वार्थी एवं धन- लोलुप व्यक्ति उनका शिकार कर अपने लिए सुख-सुविधा के साधन जुटाते हैं। इस नीली झील और पक्षियों के संरक्षण की अद्भुत लालसा को महारानी राजलक्ष्मी और राजकुमारी समीरा अपने प्राणों की आहुति देकर इसे संरक्षित करने का असफल प्रयास करती हैं। इस सुरम्य क्षेत्र का वर्णन करते हुए कथाकार ने इसका ऐतिहासिक परिचय प्रस्तुत करते हुए लिखा है। “यह वह क्षेत्र है, पाँच गाँवों का वह इलाका जो युधिष्ठिर ने दुर्योधन से महाभारत काल में मांगा था। दुर्योधन ने सुई की नोक बराबर ज़मीन देने से इन्कार कर दिया था। यही क्षेत्र था त्रिगर्त, बहरोड़, भरतपुर का, राधा यहीं की गुजरी थी और इस क्षेत्र की पौराणिक पहचान गोस्वामी नारायण भट्ट ने स्थापित की थी।” (पृष्ठ-128)

आलोच्य उपन्यास में जिन विषयों को लेकर कथा का गठन किया गया है, उनमें प्रमुख हैं :-

(1) राजा-महाराजाओं द्वारा सरकार से अपनी पैतृक सम्पत्ति को

बचाए रखने का प्रयत्न करना तथा सरकार द्वारा अधिग्रहण की गई सम्पत्ति के लिए उचित मुआवज़ा प्राप्त करने मुकदमे लड़ना।

(2) खंडित राजसी घमण्ड, ठाट-बाट एवं वैभव को बनाए रखने के लिए अधिक धन की आवश्यकता के लिए दुर्लभ प्रवासी पक्षियों का शिकार कर उनकी डमी बनाकर विदेशी व्यापारियों के सहयोग से उन्हें निर्यात करना।

(3) वन्य पशु-पक्षियों और पर्यावरण का संरक्षण तथा ऐतिहासिक धरोहरों, स्मारकों को संरक्षित करना।

उपन्यास के ऐतिहासिक परिदृश्य में है सन् 1947 में ब्रिटिश साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत सरकार द्वारा राजा-महाराजाओं से उनकी सम्पत्ति का अधिग्रहण। जिसके कारण उनके मान-सम्मान को अत्याधिक ठेस पहुँची। सुमेरगढ़ राज्य के महाराज सुरेन्द्र सिंह को भी इस दौर से गुज़रना पड़ा। सुमेरगढ़ का दुर्ग जो कल तक रोशनी में नहाया रहता था, आज वहाँ के गलियारों में अंधेरा भरा हुआ था। जहाँ के आँगन हाथियों की चिंघाड़ों, घोड़ों की हिनहिनाहट सैनिकों, दास-दासियों की आवाज़ों से भरे रहते थे, आज वहाँ सन्नाटा छाया हुआ था। सुमेरगढ़ दुर्ग खंडहर में परिवर्तित हो रहा था। अपने राजसी वैभव और शौक को महाराज भुला नहीं पाये थे। आर्थिक परिस्थितियाँ भी ऐसी नहीं रही थीं कि राजसी ठाट-बाट बनाया रख जा सके। अपने इसी अतीत और वर्तमान के ऊहापोह में महाराज सुरेन्द्र सिंह जीने के लिए विवश थे। उन्होंने परिस्थितियों से समझौता करके जीना सीख लिया था। लेकिन जब उन्हें ज्ञात हुआ कि पुरातत्व विभाग उनकी शेष सम्पत्ति पर भी अपना अधिकार जमा लेना चाहता है तो उनकी रातों की नींद उड़ गई। महाराज के दीवान द्वारिका प्रसाद ने, केन्द्रीय पुरातत्व विभाग से सर्वेक्षण करने आये अधिकारी गौतम को अनेक प्रलोभन दिये कि वह अपनी रपट न लिखें और यदि रपट लिखें भी तो राजपरिवार के पक्ष में ही लिखें। लेकिन सत्यनिष्ठ गौतम ने अपने कर्तव्य के प्रति अड़िग रहते हुए, समस्त कठिनाइयों का सामना दृढ़ता से करते हुए, निष्पक्ष रपट अपने विभाग में प्रस्तुत की। जिसके परिणामस्वरूप वह सभी इमारतों और क्षेत्र पुरातत्व विभाग ने अपने अधिकार में लेने का निर्णय किया जिसकी सिफारिश की गई थी। नीली झील का वह क्षेत्र इसमें

सम्मिलित नहीं था जहाँ गौतम की पहली मुलाकात समीरा से हुई थी।

प्रकृति प्रिय समीरा के नीली झील और वहाँ के पक्षियों का मधुर संगीत अत्यन्त प्रिय था। अतः वहाँ आकर प्रकृति का आनंद लेना उसका नित्य का कार्य था। बचपन से ही उसे पक्षियों से लगाव रहा था। वह उन्हें कष्ट में नहीं देख सकती थी। उसकी नानी माँ महारानी राजलक्ष्मी को भी पक्षियों से प्यार था। उन्होंने अपने महल में भी काकातुओं को पाल रखा था। जिन्हें एक विदेशी बहेलिये से मुँह माँगी रकम देकर खरीदा गया था। जिनके विषय में बहेलिये ने बताया था, “यह अफ्रीका के खास तोते हैं। इतने बड़े और रंगीन पैरों वाले यह तोते दुनिया में और कहीं नहीं मिलते। अब इनकी नस्ल खत्म हो रही है। मलिका।” (पृष्ठ 117) यह काकातु महारानी के जीवन के अंग बन गये थे। लेकिन एक दिन भयंकर तूफ़ान से आकुल हो, भागते-उड़ते इन काकातुओं ने महल के बहुमूल्य झूमर को गिरा दिया, महाराज सुरेन्द्र सिंह को यह सहन नहीं हुआ और उन्होंने दोनों काकातुओं को गाली मार दी। उनकी निर्मम हत्या ने महारानी पर ऐसा आघात किया कि वह भी उनके वियोग में अधिक समय तक जीवित न रह सकी। इस घटना का और महारानी की मृत्यु का गहरा प्रभाव समीरा पर पड़ा। उसका स्वभाव और विचार महारानी जैसे ही थे। बचपन से महारानी के साथ रही समीरा में भी महारानी जैसे संस्कार जन्म ले चुके थे। अब उसका शाम का समय नीली झील पर ही व्यतीत होता था। जब भी वह किसी बीमार पशु पक्षी को देखती, उसे महल में लाकर उसका उपचार कराती। उसे “पक्षियों से जितना प्यार था, पक्षी भी उससे उतना ही प्यार करते थे। वे उसके पास निर्भीक होकर चले आते थे। जब समीरा शाम के समय झील पर जाती थी तो तरह-तरह के पक्षी उसके पास चट्टान पर आ बैठते थे।” (पृष्ठ-152)

लेकिन अबोध समीरा इस वास्तविता से अपरिचित थी कि उसके पिता राजा नरेन्द्र सिंह इन्हीं पक्षियों का अवैध व्यापार करने में संलिप्त हैं। महाराज सुरेन्द्र सिंह इस तथ्य से अवगत थे कि कुछ महत्वाकांक्षी युवराजों-कुंवरों ने राजपाट चलाने के उद्देश्य से जिंदा-मुर्दा पशु-पक्षियों का व्यापार करने का एक नया धंधा खोज निकाला है। वह इसे रोकना चाहते थे, लेकिन उनकी स्थिति ऐसी नहीं थी। जब समीरा पर यह रहस्य

उद्घाटित हुआ तो उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। अपने ही महल में, अंधेरे कमरे में, पिंजरे में बंद, असहाय पक्षियों का करुण-क्रंदन सुन वह तड़प उठती है। अपने पिता के इस कृत्य पर वह बिफर उठती है—“ये कुदरत की संतान हैं। ये मासूम परिंदे आपकी मिल्कियत नहीं हैं, आपके राज्य की प्रजा नहीं हैं। ये परिंदे तो न जाने कहाँ-कहाँ से आकर, न जाने किस-किस देश से, सैकड़ों-हजारों मील दूर के देशों से यहाँ झील पर शरण लेने आते हैं। क्या शरणागतों पर यह अत्याचार आप जैसे राजपूतों का धर्म रह गया है? आपने इन्हें एक्सपोर्ट करने के लिए कैद किया था। क्या धन की भूख ने आपकी मान-मर्यादा और धर्म सब कुछ निगल लिया है, आप राजपूत नहीं हत्यारे हैं-हत्यारे।” पृष्ठ-156) समीरा के आश्चर्य की परिकाष्ठा तो उस समय नहीं रहती जब उसे यह मालूम होता है कि उसके पति स्वयं जीवन को नष्ट करके, जीवन के लिए सौंदर्य पैदा करने में लिप्त हैं। अपनी टेंनरी में निर्यात करने के उद्देश्य से काँच के शीशों में सजाये गये स्फ़ड़ बर्ड्स को दिखाते हुए जहाँ उसका पति कुंवर जय सिंह उन पर आत्ममृग्य हो रहा था; वहीं समीरा के लिए पूरा ब्रह्माण्ड ठहर गया था। वह संज्ञाशून्य-सी खड़ी उन गुनगुनाते पक्षियों को निर्जीव, मूक, निश्चेष्ट देख रही थी। जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। उसके आश्चर्य का पारावार तो उस समय और भी नहीं रहा जब उसने एक इन्द्रधनुषी तोते को देखा, जिसके पैर में रत्ती का भूंगा-घुंघरू बंधा था। इस तोते को समीरा ने कभी शिकारी की गोली से घायल अवस्था में, नीली झील में तड़पते हुए देखा था। जिसका उसने महल में ले जाकर उपचार किया था और स्वस्थ होने पर स्वतंत्र छोड़ दिया था, इस आशा के साथ कि अगले वर्ष सर्दियों में वह पुनः इसे नीली झील पर देख पायेगी। आज वही उसके सम्मुख एक निर्जीव-स्फ़ड़ रूप में दिखाई दे रहा था। यद्यपि अपने पति के साथ रतनपुर में आकर वह नीली झील को भूल ही गई थी। इस घटना के पश्चात् आज वह अपनी पीड़ा और वेदना को नीली झील के किनारे बैठ कर शान्त करना चाहती थी। लेकिन आज इस नीली झील की शान्ति भी भंग हो चुकी थी। बहेलिये, कुंवर नरेन्द्र सिंह का संरक्षण प्राप्त कर स्वतंत्रतापूर्वक पक्षियों का शिकार करने लगे थे। अंततः नीली झील के तट पर ही, उसके संरक्षण हेतु समीरा को अपने प्राण गंवाने पड़ते हैं।

आलोच्य उपन्यास में कथाकार ने कथा की विस्तार देने के उद्देश्य से राजकुमारी समीरा, उसकी सखी दिव्या पुरातत्त्व सर्वेक्षण अधिकारी गौतम के प्रेम-प्रसंगों की भी दर्शाया है। यद्यपि गौतम का समीरा के प्रति आकर्षण केवल उसके लिए 'उसकी कुछ भावनाओं का अहसास' मात्र था। दूसरी और मास्टर दीनानाथ की बेटी दिव्या का गौतम के प्रति प्रेम एकतरफा था। गौतम, उसकी इस भावना से अपरिचित ही था। समीरा और गौतम को एक-दूसरे के निकट देख, दिव्या की यह शंका कि वह एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। भ्रामक थी। स्वयं को उनके रास्ते से हटाने के लिए उसका नीली झील में डूब कर आत्महत्या का नाटक करना तथा स्वयं को मीरा के समान संयासिन, के रूप में उद्घाटित करना उपन्यास की कथावस्तु के प्रतिकूल प्रतीत होता है। गौतम की माँ द्वारा जमा की गई पूँजी द्वारा उसकी अन्तिम इच्छानुसार शिप्रा के तट पर धर्मशाला का निर्माण करने के स्थान पर नौ लाख रूपयों में नगर परिषद् द्वारा नीलाम की जाने वाली नीली झील को खरीदना तथा समीरा की स्मृति में वहाँ 'पंछियों की धर्मशाला, यहाँ शिकार करना मना है, का वृत्तांत गले नहीं उतरता।

उपन्यास को अन्तिम रूप देने में कथाकार ने अत्यन्त शीघ्रता का परिचय दिया है। प्रवासी पंछी की भाँति समीरा की हत्या के प्रसंग को समाप्त करना, मास्टर दीनानाथ का कुरुक्षेत्र में एक लोकगीत-संगीत सम्मेलन में जाकर अपनी बेटी दिव्या से मिलना, उसका आजीवन संयस्त जीवन व्यतीत करने का निर्णय लेना, अचानक गौतम की माँ का निधन होना और उसके पास दस-ग्यारह लाख रुपये का जमा होना, महाराज सुरेन्द्र सिंह का अपनी सम्पत्ति नगर परिषद् को बेचना, नगर परिषद् द्वारा नीली झील की नीलामी का ज्ञापन निकालना तथा उसकी कीमत नौ लाख रुपये निर्धारित करना, गौतम द्वारा उस झील को खरीदना, उस झील को धर्मशाला के रूप में उद्घोषित करना- यह सभी घटनाएं पाँच- छह पृष्ठों में समाहित कर उपन्यास का अन्त करना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता।

इसमें संदेह नहीं कि पहले भी कुछ धन-लोलुप लोगों ने प्रकृति के साथ ऐसा क्रूर व्यवहार किया है, जिसके चलते सम्पूर्ण मानव-जाति को उसका दंड भोगना पड़ा है। पर्यावरण असंतुलन के कारण जहाँ वन्य जीवों ने शहरों की ओर रुख किया, वहीं संगीत लहरी बिखेरते दुर्लभ पक्षी

वातावरण में घुली बारूदी गंध और दिल दहला देने वाली गोलियों की अवाजों से आतंकित हुए हैं। यह प्रक्रिया शताब्दियों से चली आ रही है। जिसे रोकने की आवश्यकता है। उस समय भी जीव-दया, अहिंसा और करुणा के स्वर को मुखरित किया गया था। अपने अतीत से भली-भाँतति-परिचित होते हुए भी हम इस प्रक्रिया को जारी रखे हुए हैं। व्यतीत, जो बीता नहीं आज भी मुखरित है। लुप्त होती दुर्लभ प्रजातियों के संरक्षण हेतु यद्यपि आज अनेक कदम उठाए गये हैं फिर भी यह घृणित कृत्य जारी है। उपन्यासकार कमलेश्वर अपने इस 'अनबीते व्यतीत' उपन्यास में इसी तथ्य को मुख्य रूप से उजागर करना चाहते हैं कि पक्षी पिंजरों में नहीं, पेड़ों और उन्मुक्त आकाश में उड़ते हुए ही अच्छे लगते हैं। जब वह एक साथ चहचहाते हैं तो ऐसा लगता है जैसे आर्कस्ट्रा बज रहा हो। उनका कलख ही प्रकृति का शाश्वत संगीत है। इस शाश्वता को नष्ट करने वाले हाथों को रोकना होगा, पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर बल देना वाला आलोच्य उपन्यास वन्य पशु-पक्षियों को संरक्षित करने के लिए पाठकों को प्रेरित करेगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

मोहल्ला; साजगरीपोरा (हवल)

श्रीनगर-190011 (कश्मीर)

कादम्बिनी (मासिक) अक्टूबर 2004 के अंक में प्रकाशित कमलेश्वर का नवीन उपन्यास 'अनबीता व्यतीत' के आधार पर।

भाषा विज्ञान के प्रतिभान

डॉ. आदिल अमीन काकू

यह सर्वविदित है कि भाषा विज्ञान का इतिहास रोमी और यूनानियों से आरम्भ होता है। जिसके अन्तर्गत भाषा का विकास विभिन्न व्याकरण भेदों यथा :- क्रिया, कर्म, विशेषण आदि के अतिरिक्त भाषा के स्वभाव के विषय में विचार किया गया। किन्तु भाषा विज्ञान का मूल इतिहास 19 वीं शताब्दी से आरम्भ होता है, जब सर विलियम जोन्स ने भाषा-परिवारों के विषय में अपना मूल्यांकन प्रस्तुत किया। उनके अनुसार प्रत्येक भाषा का मूलाधार अन्य दूसरी पूर्व प्रचलित भाषा पर आधारित होता है। जिसे उसकी बेटी कहा जाता है। इन दोनों भाषाओं का सम्बन्ध माँ-बेटी के समान होता है। जैसे; भारत के उत्तरी क्षेत्र की भाषाएँ संस्कृत भाषा की बेटियाँ हैं। इसके फलस्वरूप भाषा विज्ञान के अन्तर्गत भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन आरम्भ हुआ। जहाँ समस्त भाषाओं की सादृश्यता को देखने का प्रयत्न किया जाता है। तथा वैषम्य और साम्य के आधार पर भाषाओं के आन्तरिक सम्बन्ध निश्चित किए जाते हैं। जिसे 'व्युत्पत्ति शास्त्र' या 'भाषा विज्ञान का तुलनात्मक इतिहास' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। व्युत्पत्ति शास्त्र पहले केवल भाषाओं के लिखित रूप पर आधारित था। इसमें बोले जाने वाली भाषाएँ सम्मिलित नहीं थीं क्योंकि तत्कालीन अनेक सभ्यताओं के मिट जाने के कारण इनमें से कुछ भाषाओं का अस्तित्व ही समाप्त हो गया था, लेकिन उनकी कुछ भाषिक लिपियों के प्रमाण फिर भी उपलब्ध रहे। जिन का अध्ययन एवं विश्लेषण कर तत्कालीन भाषाओं का आधुनिक संदर्भ में उनकी भाषिक समानताओं को देखा जाता है।

समय के साथ-साथ भाषा विज्ञान के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर भाषा विज्ञान को अनेक गम्भीर समस्याओं का सामना करना पड़ा। तत्पश्चात् एक नई प्रथा का आरम्भ हुआ। भाषा विज्ञान की शब्दावली में इसे 'आकृति विज्ञान' (Structuralism) कहा जाता है। इसके उद्भावक फ़िर्दिनन्द डि ससूर (Ferdinand de Saussure) 1857-1913) माने जाते हैं। उन्हें नवीन। उन्हें नवीन भाषा विज्ञान का पितामह भी कहा जाता है। उनके योगदान को मुख्य रूप से चार भागों में बाँटा जा सकता है :-

1. बुद्धि सम्बन्धी -बनाम- कंठस्थ

(Lamgtte v/s Paraole)

2. एक समय के आधार पर -बनाम- भिन्न-भिन्न समय पर
(Synchronic v/s Diachronic)

3. समतल -बनाम- वक्र

(Syntorgmagtie v/s Paradigmatie)

4. आकृति -बनाम- पदार्थ

(Form v/s Substance)

फिर्दिनन्द के सकमालीन भाषा वैज्ञानिक फैंज वाउस (1858-1942) ने वर्णनात्मक भाषा विज्ञान (Synechronic Linguistics) को प्रतिपादित किया। जिसके अन्तर्गत मानवीय व्यवहार को उसकी प्रवृत्ति के आधार पर 'आकृति विज्ञान' नाम देकर भाषा विज्ञान में सम्मिलित किया गया। इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ भाषा विज्ञान के क्षेत्र में ब्लूमफील्ड के पदार्पण के साथ हुआ। मानवीय व्यवहार की प्रवृत्ति का सम्बन्ध मुख्य रूप से उत्तेजना उद्दीपन अथवा उभार और पत्र-व्यवहार (Stimulus and Re-sponde) से है। यह प्रवृत्ति भाषा में भी प्रयुक्त होती है। यद्यपि यह कोई पृथक विधा नहीं है अपितु इसी भाषा विज्ञान का एक अभाषिक वैज्ञानिक अंग है।

ब्लूमफील्ड (1939) ने प्रस्तुत उदाहरण देकर इसकी व्याख्या इस प्रकार की है :-

जोन और मैरी चल रहे थे। मैरी ने सेब का एक पेड़ देखा। उसने जोन से कहा कि वह उसके लिए सेब लाए। जोन सेब लाकर मैरी को देता है। इस सम्पूर्ण क्रिया का उद्घाटन इस प्रकार होता है :-

स → [⌣] र → र

S → r S → R

स (S) संकेत करता है कि मैरी को सेब की लगन है।

[⌣] (r) संकेत करता है कि मैरी, जोन से सेब मांगती है।

र (S) संकेत करता है कि जोन वह सब कुछ सुनता है जो मैरी उससे कहती है।

र (R) संकेत करता है कि जोन सेब लाता है।

अतः एक विशेष कार्य ([⌣].....स) (r.....S) कोई अलग क्रिया नहीं है। परन्तु एक ऐसा कार्य है जो कि अविशेष कार्य के साथ-साथ होता है।

जैसे कि यह धारण रही थी कि बालक भाषा का प्रयोग सुन कर करता है और रूचि ज्ञान की उपेक्षा की जाती है।

भाषा विज्ञान के क्षेत्र में नौम चौमस्कीय के पदार्पण से एक नई क्रान्ति का अभ्युदय हुआ। सामस्त प्राचीन मान्यताओं और विश्वासों को निरस्त कर एक नवीन मान्यता को स्थापित किया गया। भाषा की प्राप्ति के लिए चौमस्कीय ने 'रूचि' को प्रमुख द्वार माना। उनके अनुसार प्रत्येक जाति विशेष के लोगों में रूचि के अनुरूप भाषा एक सहायक सयंत्र (Language Acquisition Device) होता है। एक अबोध बालक को जब किसी अन्य भाषा-भाषियों के मध्य रखा जाता है तो वह उस भाषा के व्याकरण के नियमों का पालन करने लगता है। धीरे- धीरे उस भाषा के वाक्यों का प्रयोग करने लगता है। वह ऐसे वाक्यों का प्रयोग भी करने लगता है। जो उसने कभी सुने नहीं होते। चौमस्कीय के अनुसार संसार का प्रत्येक प्राणी भाषा का प्रयोग करता है। और प्रत्येक भाषा, प्रत्येक प्राणी के व्यक्तित्व को उद्घटित करती है। पशु इस परिधि में नहीं आते। मानव जाति जिन भाषाओं का प्रयोग करती है, वह भिन्न होते हुए भी एक सर्वसाधारण व्याकरण है। जिसे 'विश्व सम्बन्धी' या 'सम्पूर्ण व्याकरण' (Universal grammar) कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में सम्पूर्ण व्याकरण जन्म से विद्यमान होता है। उस समय वह भाषा का प्रयोग उव्यवहारिक रूप से करता है, परन्तु अपने भावों को प्रकट नहीं कर पाता, चौमस्कीय ने 'विश्व सम्बन्धी व्याकरण' को दो भागों में बाँटा है। :-

1. मूल हेतु (Principles)
2. सीमित हेतु (Parameters)

मूल हेतु, विश्व सम्बन्धी लक्षण होने के कारण प्रत्येक भाषा में व्याप्त है। परन्तु सीमित लक्षण हेतु को प्रत्येक भाषा में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। भाषिक लक्षणों के अनुरूप ही इसका चयन किया जा सकता है।

चौमस्कीय ने सन् 1980 के दशक में 'विश्व सम्बन्धी व्याकरण' के मिश्रणों तथा उनके प्रयोग के सिद्धान्तों का वर्णन विस्तृत रूप में अपनी पुस्तक 'शास्त्र और बधन सिद्धान्त' (Government And Binding Theory) में किया है। इन सिद्धान्तों के अनेक उपभाग हैं जैसे शास्त्र, बधन रूप विचारणीय नियम (Projection Principle), विस्तृत विचारणीय नियम (Extended Projection Principle)

आदि। उनके सिद्धान्त को प्रवृत्ति में परिवर्तन उत्पन्न करने वाला सिद्धान्त भी कहा जाता है। अनेक बार उन्होंने अपने सिद्धान्तों में परिवर्तन भी किया। उनका अन्तिम सिद्धान्त है - पूर्व विस्तृत पुनः निरीक्षण सिद्धान्त' (Revised Extended Standard Theory) जिसे इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है।

D- Structure $\xrightarrow{\text{Moved}}$ S- Structure $\begin{matrix} \swarrow \text{LF} \\ \searrow \text{LF} \end{matrix}$

जहाँ D- Structure और S- Structure दो अलग-अलग अव्यवहारिक रूप हैं, जिन्हें बोलने से पहले वाक्यों में प्रयुक्त किया जाता है। सन् 1994 में चौमस्कीय ने अपनी नवीन रचना 'सर्वलघु सूचना पत्र' (Minimalist Program) में कुछ और परिवर्तन लाकर 'पूर्व विस्तृत पुनः निरीक्षण सिद्धान्त' में संशोधन प्रस्तुत कर भाषा विज्ञान के क्षेत्र में एक नए अध्याय को सम्मिलित किया।

अन्त में कहा जा सकता है कि पूर्व शताब्दी में भाषा विज्ञान ने काफी उन्नति की है और उन्नति के पथ की ओर अग्रसर है। इसने अपने पद-चिन्ह कई क्षेत्रों-तत्त्व ज्ञान, आत्म तत्त्व विद्या आदि में छोड़े हैं। यह भाषा विज्ञान भविष्य में और किन-किन ज्ञान क्षेत्रों पर दस्तक देगा, यह हम सभी देखेंगे।

भाषा विज्ञान विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर (कश्मीर)

मैं पालूंगा एक सपना

निदा नवाज़

मैं पालूंगा एक सपना
जिस में होगी एक पुरी सृष्टि
एक सुंदर सा शहर
जहां अभी तक
नहीं तराशा गया होगा कोई ईश्वर
नही जानते होंगे लोग झुकना
न ही टेढ़ी हो गई होंगी
उन की रीढ़ की हड्डीयां
मेरे सपने में
ईजाद नहीं हुई होंगी
तिजोरियां
और न ही जंजीरें
जिन लोगों के पास नहीं होता कोई ईश्वर
वे नहीं बनाते तलवारें, किरपान और त्रिशूल
न ही उनके पास होता है डर
न दूसरों को डराने वाली कोई बात
जहां तिजोरियां नहीं होती
वहां नहीं होती भूख
जहां ताले नहीं होते
वहां नहीं होते चोर
जहां मालिक नहीं होते
वहां नहीं होतीं जंजीरें
मैं अपने सपने को पालूंगा और बढ़ा करूंगा
मेरा सपना भरेगा
संघर्ष के धरातल पर खरगोश की किलकारियां
मैं उनमें बोऊंगा इच्छाओं के सारे बीज

टांकूंगा भावनाओं के सारे पुष्प
 मेरे सपने में उड़ेंगीं
 तर्क की रंगीन तितलियां।
 चहकेगी
 यथार्थ की बुलबुल
 मेरे सपने में पनपेगी
 मिट्टी की सौंधी सौंधी खुशबू।
 मैं अपना सपना कोयले की खान में काम करने वाले
 मजदूर को दूंगा
 वह मेरे सपने को सर्चिंग टार्च में बदल देगा।
 जो उसको खान की अन्धेरी सुरंगों से निकाल कर
 सृष्टि के अंतिम छोर तक ले जाएगी
 जहां होगा उसका पूरा संसार।

मैं अपने सपने को
 स्कूल जाते बच्चों के टिफिन में रख लूंगा
 जिसको देख वह भूल जाएंगे
 भारी बस्तों के बोझ से घिसी
 अपनी नन्हीं पीठ का नन्हा सा दर्द।

मैं अपना सपना
 वैज्ञानिक को दूंगा
 जो उसको जीवन प्रयोगशाला की
 मेज पर पड़े
 उस कंकाल पर अजमायेगा
 जिस पर युगों से केवल
 प्रयोग ही किए जा रहे हैं।
 मेरे सपने से उभर आएगा मांस
 ओर उसमें दौड़ेगा जीवन

मैं अपने सपने को रोप लूंगा
 सरिता के पानियों पर
 उसकी लहरों पर दहकेगा

एक पुरा ब्रह्माण्ड
जिसमें पिघल जाएगा
वह अकेला हंस भी
जिसकी आखों में
केवल मेरे नाम की इबारत लिखी है।

मैं अपना सपना परोस लूंगा
रिफ्यूजी कैम्पों में जन्म लेने वाले
उन सभी बच्चों की आखों के थालों में
जिनकी माएं
अपने सूखे खेतों को खुला छोड़ने पर मजबूर हैं।
दूसरों के चरने के लिए
केवल एक रजिस्ट्रेशन कार्ड बनवाने के लिए और उसमें एक
काल्पनिक पितृ नाम भरने के लिए

मैं अपना सपना मछरे को दूंगा
जो बून लेगा उससे
एक रंगीन जाल
और पकड़ेगा
सागर की सबसे सुन्दर मछली
जिसपर कभी मगरमच्छ की नजर न पड़ चुकी हो
और न ही उसकी आंखों में
अटक गया हो किसी का फेंका कोई तीर
मैं। उसको अपने भीतर के एकवेरियम में पालूंगा।

मैं अपना सपना समुंद्र को दूंगा
बदले में मांगूंगा उसका सारा नमक
जिसको छिड़का सकूं एकांत में
अपने उस ताजे से घाव पर
जिसमें फड़फड़ा रही है
क्रांति नाम की एक नई कविता।

कोयल, पुलवामा कश्मीर 192301,
फोन: 01933-286929

कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में आयोजित 'हिन्दी दिवस' एक रिपोर्ट

'हिन्दी दिवस' के संदर्भ में दिनांक: 22,9,2004 को हिन्दी विभाग में 'हिन्दी दिवस समारोह' आयोजित किया गया। श्री रमेश मेहता, सचिव, कल्चरल अकादमी, जम्मू व कश्मीर इस समारोह में मुख्य अतिथि थे। कश्मीर विश्वविद्यालय के डीन एकेडेमिक्स, प्रो. खुर्शीद अली, डीन, कला संकाय प्रो. सिद्दीक नियाज़मन्द, डॉ० निज़ामुद्दीन के अतिरिक्त विश्वविद्यालय, कला संकाय के समस्त विभागाध्यक्ष तथा अनेक महाविद्यालयों के प्रवक्ता इसमें उपस्थित थे।

मुख्य अतिथि, श्री रमेश मेहता जी ने हिन्दी विभाग में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन तथा कश्मीर में हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य को देखते हुए संतोष व्यक्त किया। प्रो. खुर्शीद अली साहब ने अपने अभिभाषण में हिन्दी विभाग की अध्यक्ष प्रो. जौहरा अफ़जल को आश्वासन तथा विश्वास दिलाया कि वह हिन्दी विभाग की उन्नति तथा हिन्दी के विकास के लिए प्रत्येक प्रकार का सहयोग देने का लिए तत्पर रहेंगे। तथा इस बात पर बल दिया कि हिन्दी हम सब की भाषा है। इसे किसी जाति या धर्म विशेष से जोड़कर नहीं देखना चाहिए। प्रो. सिद्दीक नियाज़मन्द साहब ने समस्त भारतीय भाषाओं को एक मानते हुए; सभी भाषाओं को अंगीकार करने पर बल दिया। डॉ. निज़ामुद्दीन ने कश्मीर में सन् 1960 से लेकर आज तक हिन्दी के विकास महत्व तथा कश्मीर जैसे अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी की उपयोगिता को रेखांकित करते हुए कहा यह एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से जोड़ने वाली भाषा है। डॉ० दिलशाद जीलानी ने अपने अभिभाषण में कश्मीर में हिन्दी की स्थिति, साहित्यिक गतिविधियाँ तथा यहाँ हुई प्रगति को उद्घटित किया। हिन्दी विभाग की अध्यापिका प्रो. जौहरा अफ़जल ने अपने अभिभाषण में प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद हिन्दी विभाग में अध्ययन-अध्यापन तथा शोध कार्य को जारी रखने में उप-कुलपति,

कुलसचिव तथा विश्वविद्यालय के अन्य अधिकारियों के सहयोग के लिए अभार व्यक्त किया।

कश्मीर के बी.एड. महाविद्यालयों तथा राजकीय महाविद्यालयों के अध्यापक तथा हिन्दी शिक्षण पारंगत हेतु अध्ययनरत छात्र-छात्राएं भी इस समारोह में उपस्थित थीं। इस अवसर पर एक कवि संगोष्ठी का आयोजन भी किया गया, जिसमें कश्मीर के प्रसिद्ध कवि श्री निदा नवाज़ के अतिरिक्त अन्य उभरते कवियों तथा छात्रों ने अपनी कविताएं प्रस्तुत कीं। इस कार्यक्रम के अन्तरगत 'कश्मीर में हिन्दी: दशा और दिशा' विषय पर एक निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन भी किया गया। जिसमें प्रथम द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी प्राप्त करने वालों छात्रों को क्रमशः 200, 150, तथा 100 रु. के नकद पुरस्कार प्रदान किए गए। कार्यक्रम के अन्त में एक रंगारंग कार्यक्रम भी आयोजित किया गया। जिसमें कश्मीरी, हिन्दी और पंजाबी के गीत प्रस्तुत कर संस्कृतिक एकता की भावना को दृढ़ किया गया। तथा वर्तमान युग में शिक्षा के महत्त्व एवं उपयोगिता को रेखांकित करते हुए एम.ए.हिन्दी के छात्र-छात्राओं ने एक लघु नाटक भी प्रस्तुत किया।

यह एक अवसर था जहाँ प्रत्येक व्यक्ति ने हिन्दी की उपयोगिता तथा महत्त्व को स्वीकार किया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा 'हिन्दी दिवस' का आयोजन लगभग एक दशक से अधिक समय के पश्चात् आयोजित किया गया। इस अवसर पर हिन्दी विभाग के प्रथम अध्यक्ष श्री हरिहर प्रसाद गुप्त के अतिरिक्त प्रो. जगन्नाथ तिवारी, प्रो. रमेश कुमार शर्मा, प्रो. मोहम्मद अय्यूब खान, प्रो. भूषणलाल कौल, प्रो. मोहनी कौल को उनकी हिन्दी के प्रति निष्ठा, सेवाभाव तथा कर्मठता के लिए याद किया गया।

